

म[illegible]ारा

विचार यात्रा

(आज का युगबोध में प्रकाशित
प्रमुख भाषणों का संकलन)

मोतीलाल वोरा

विचार यात्रा

(आज का युगबोध मेंप्रकाशित प्रमुख भाषणों का संकलन)

आज का युगबोध साप्ताहिक
एम-१ पेपर मिल कालोनी
निशातगंज, लखनऊ
फोन : ३८५१४४

विचार यात्रा

प्रकाशकः

आज का युगबोध
एम-१ पेपर मिल कालोनी
निशातगंज-लखनऊ
फोनः ३८५१४४

सम्पादकः

❑ **सत्यदेव त्रिपाठी**

सम्पादकीय सहयोगीः

● **श्रीमती आशा त्रिपाठी**
● **बृजेन्द्र प्रताप सेंगर**
● **पी.के. शर्मा**

मूल्य :

दो सौ पचास रुपया

मुद्रकः

शिल्पी आफसेट थापर हाउस.पार्क
रोड, लखनऊ

लेजर प्रिंटिंगः

क्रिएटिव डी.टी.पी. सेंटर, शिवानी विहार-कल्यानपुर

अपनी ओर से

आजादी के बाद उत्तर प्रदेश के भव्य राजभवन में कई विद्वान एवं सफल प्रशासक राज्यपाल बनकर आए, किन्तु राजभवन को नया आयाम प्रदान किया श्री मोतीलाल वोरा ने। अंग्रेजी शासनकाल में लाट साहब के निवास की भव्यता और सामंती शानशौकत आम आदमी के मन में एक अजीब खौफ पैदा करती थी।

श्री वोरा ने अपने व्यक्तितव और कल्पनाशीलता से राजभवन को देश की राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक राष्ट्रपिता बापू की स्मृतियों से जोड़ दिया। दरबार हाल अब गांधी सभागार है, और ऊपर स्थित है गांधी जी के आजादी के आंदोलन के दौरान उत्तर प्रदेश दौरे के अनुपलब्ध चित्रों से सजी गांधी दर्शन दीर्घा। यह एक अभिनव और बड़ी कल्पना थी कि आम आदमी अब इस भव्य भवन के शानदार लान पर अपनी व्यथा अपने राज्यपाल से कहने के लिए जाने में गर्व और हर्ष अनुभव करता है।

गांधी जी के हर कार्य का केन्द्र बिन्दु था– आम आदमी। दरिद्रनारायण की सेवा में अहर्निश लगे रहने को ही बापू धर्म मानते थे। परहित सरिस धर्म नहिं भाई को गांधी जी ने अपने जीवन में उतारा था। श्री वोरा ने भी गांधी जी की स्थापनाओं को साकार करने का अथक प्रयास किया है। आम आदमी के मन में शासन के प्रति विश्वास जागृत हो सके– आज की यह महान आवश्यकता है।

अनेक अवसरों पर प्रमुख विषयों पर दिए गए कुछ भाषणों के अंशों को विगत दो वर्षों के अंतराल में युबोध ने अपने अंकों में प्रकाशित किया है। यह संकलन उन भाषणों को अपने सुधी पाठकों की सेवा में पुस्तक के रूप में भेंट कर रहा है।

आशा है कि विद्वान पाठक इसे पसंद करेंगे।

मैं आभारी हूं, उन सबके योगदान का, जिनका सहयोग और श्रम इस रूप में फलित हुआ। एवमस्तु

● सम्पादक

●

बहुआयामी व्यक्तित्व एक नजर में

जन्म	:	२० दिसम्बर १९२८ नागौर जिला राजस्थान
शिक्षा	:	रायपुर (मध्य प्रदेश)
व्यवसाय	:	पत्रकारिता
राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन	:	समाजवादी आंदोलन से प्रभावित एवं समाजवादी पार्टी में शामिल

- १९६८ दुर्ग नगरपालिका का चुनाव लड़ा और भारी मतों से विजयी।
- १९७२ प्रथम बार मध्य प्रदेश विधानसभा के सदस्य चुने गये।
- मध्य प्रदेश राज्य परिवहन निगम के उपाध्यक्ष नियुक्त तथा मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचंद्र सेठी द्वारा राज्यमंत्री का दर्जा।
- १९७७ में जनता लहर के बावजूद विधानसभा के लिए चुने गये, विरोध पक्ष की प्रभावी भूमिका का निर्वहन।
- १९८० में पुनः विधानसभा सदस्य निर्वाचित, श्री अर्जुन सिंह के मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री।
- ३० जून १९८३ मध्य प्रदेश शासन में कैबिनेट मंत्री पद।
- १३ मार्च १९८५ को मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री पद की शपथ।
- १४ फरवरी १९८८ को केन्द्रीय मंत्रिमंडल में स्वास्थ्य मंत्री पद की शपथ।
- २५ जनवरी १९८९ को दोबारा मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री बने।
- २६ मई १९९३ को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद की शपथ।

विषय-क्रम

मानव मात्र के प्रेरणा स्रोत : राम

राष्ट्रीय रामायण मेला, चित्रकूटधाम द्वारा भारत की इस प्राचीन एवं पावन तीर्थ-स्थली में आयोजित रामायण मेले के समापन समारोह में भाग लेकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूं कि आज मुझे चित्रकूटधाम में आने का गौरव प्राप्त हुआ। इसका श्रेय राष्ट्रीय रामायण मेले के आयोजकों को जाता है, जिन्होंने इस मेले में मुझे भाग लेने के लिए यहां आमंत्रित किया।

भारत के विशाल प्रदेश- उत्तर प्रदेश की पावन तीर्थ नगरी अयोध्या में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने जन्म लेकर अपना आदर्श जीवन व्यतीत किया तथा इसी चित्रकूट में बनवास का समय व्यतीत किया। इससे इन दोनों तीर्थ नगरियों का महात्म्य स्वयं स्पष्ट है। श्री राम का आदर्श जीवन वस्तुतः समस्त मानव जाति के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। यह निर्विवाद सत्य है कि मानव श्री राम के आदर्श जीवन के अनुरूप जीवन व्यतीत करके निश्चय ही साधारण पुरुष से महापुरुष बन सकता है। उनके बारे में मैं इतना ही कहूंगा कि श्री राम के बहुआयामी आदर्श जीवन का हर पक्ष एक ऐसा अद्भुत प्रकाश स्तम्भ है, जिससे मानवता सदैव जीवन से ही प्रभावित होकर महर्षि बाल्मीकि ने सबसे पहले संस्कृति भाषा में रामायण की रचना की और महाकवि तुलसीदास ने अवधी भाषा में धर्मग्रंथ रामचरित मानस की रचना की।

भारत में वाल्मीकि रामायण की तीन मुख्य धाराएं हैं, जो मानव जीवन के तीन महत्वपूर्ण पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं- साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक। पहली धारा भारत के पड़ोसी देशों- बर्मा, थाइलैंड, कम्बोडिया, मलेशिया, इंडोनेशिया आदि में प्रवाहित हुई, जिसके अन्तर्गत अपनी-अपनी रामायणों की रचना हुई।

दूसरी धारा पश्चिमी देशों में प्रवाहित हुई, जिसमें भारतीय रामायणों के अनुवाद हुए और जिसने वहां के विश्वविद्यालयों में भी स्थान पाया। तीसरी धारा सबसे अधिक व्यापक है जो भारत से बाहर रामचरित मानस के माध्यम से भारतवंशी बहुल देशों में पहुंची। यह भक्ति की धारा है, जिसे आध्यात्मिक धारा माना जाता है। इन धाराओं में जो उपलब्ध रामायण साहित्य है, उसका मंथन करते हुए उसका नवनीत विश्व के कोने-कोने तक पहुंचता है। रामायण सम्मेलनों के माध्यम से विद्वानों के आलेखों, भाषणों आदि के माध्यम से जिस अमर साहित्य का निर्माण हो रहा है, वह आगे आने वाली पीढ़ियों को युगों तक प्रेरित और लाभान्वित करता रहेगा तथा रामायण के विश्व परिप्रेक्ष्य के शोधार्थियों के लिए यह साहित्य शोध का आधार बनेगा।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारत में एक ऐसे शासन-तंत्र की स्थापना का सपना देखा था, जो बिल्कुल रामराज्य जैसा हो। रामायण के इसी महत्व को दृष्टिगत रखते हुये समाजवादी नेता डा. राम मनोहर लोहिया ने चित्रकूट में रामायण मेले का आयोजन करने की

कल्पना इस उद्देश्य से की थी कि इससे समस्त देशवासियों में भावात्मक एकता की भावना प्रबल की जा सके। रामायण मेले की कल्पना के साथ ही डा. लोहिया ने इसके चार प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किये थे– १. आनन्द, २. रससंचार, ३. दृष्टिबोध और ४. हिन्दुस्तानी को बढ़ावा। इस बहुचर्चित राष्ट्रीय रामायण मेले के आयोजन के बारे में कविवर रहीम की निम्न पंक्तियां उल्लेखनीय हैं–

राम चरित मानस विमल, संतन जीवन प्रान।
हिन्दुवान को भेद सम, जवनहिं प्रगट कुरान।।

डा. लोहिया ने रामायण मेले के लिए चित्रकूट का चयन जिस कारण से किया था, उसके बारे में स्वयं उनका कहना है कि 'मैं राम से प्रभावित हूं और उनका एक विचित्र भक्त हूं... राम, रामायण और तुलसी का महत्व हमारे सांस्कृतिक जीवन में सर्वोपरि है... चित्रकूट में रामायण मेले की बात सोचते समय मेरे दिमाग में कई बातें आईं। एक तो चित्रकूट उत्तर और दक्षिण भारत का मिलन द्वार है, दूसरी यह बात है कि यह क्षेत्र निर्धन है, पिछड़ा है। यहां की सांस्कृतिक चेतना भी अर्द्धविकसित है। मैंने सोचा था– रामायण मेले से जहां देश में एकता की लहर दौड़ेगी, एशियाई देशों से हमारे संबंध मधुर होंगे और उन देशों की जनता के बीच भ्रातृत्व भावना जागेगी, वहां चित्रकूट की समस्याएं भी सुधरेंगी। इसके अतिरिक्त, अछूतोद्धार, नारी जागरण तथा नैतिक सुधार की दिशा में भी रामायण मेला प्रभावकारी सिद्ध होगा।

आज की विषम परिस्थितियों में जबकि धर्म और सम्प्रदायगत संघर्ष राष्ट्र की एकता और अस्मिता पर कुठाराघात कर रहा है, लोग अपने संबंधों और दायित्वों को भूलते जा रहे हैं, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों में ह्रास होता जा रहा है। स्वार्थपरता, पद–लिप्सा और हिंसा बढ़ती जा रही है। राम साहित्य की प्रासंगिकता पहले की अपेक्षा उतनी ही अधिक बढ़ गई है।

श्री राम सर्वव्यापी और अन्तरयामी हैं। श्री राम को किसी धर्म, जाति और वर्ग के नाम पर सीमित नहीं रखा जा सकता। वास्तव में उनका जन्म मानव जाति के उद्धार एवं कल्याण के लिए हुआ था। श्री राम ने जन–जन को आदर्श जीवन जीने का उपदेश देने के साथ ही स्वयं आदर्श जीवन का बेमिसाल नमूना प्रस्तुत किया था। आज जरूरत इस बात की है कि सभी लोग उनके आदर्श जीवन के अनुरूप ही जीवन–यापन करने का प्रयास करते रहें। तभी भारत में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सपनों के अनुरूप रामराज्य की पुनः स्थापना हो सकेगी और समस्त देशवासी सुखमय और शांतिमय जीवन व्यतीत कर सकेंगे। ऐसा मुझे दृढ़ विश्वास है।

महर्षि वाल्मीकि ने सबसे पहले समाज में 'रामराज्य' की स्थापना के लक्ष्य की पूर्ति के लिए संस्कृत भाषा में रामायण की रचना की थी। इससे प्रेरित होकर महाकवि तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना करके धर्म क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किया। रामायण वस्तुतः वह श्रेष्ठ एवं रोचक धर्म ग्रंथ है, जिसके देश एवं विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद किये

गये हैं। इस सिलसिले में तेलुगू की रंगनाथ रामायण तथा तमिल की कंब रामायण की दक्षिण भारत में अपनी एक विशिष्ट महिमा एवं गरिमा है। इसके अलावा आनन्द रामायण, बंगला रामायण, बलराम रामायण आदि भी हमारे देश के अनेक क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय है।

गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वाल्मीकि की ही भांति रामचरित मानस की रचना की है, जिसमें भगवान श्रीराम के आदर्श जीवन के सभी पक्षों का बड़ा ही सुन्दर एवं प्रेरणादायक वर्णन किया है। तुलसीदास जी ने हिन्दी की आम बोलचाल की सरल एवं सरस भाषा में इसकी रचना करके जन–मानस पर बहुत बड़ा एहसान किया है। इसे पढ़कर मानव सहज ही प्रेरित होकर असत्य से सत्य, अन्याय से न्याय, पाप से पुण्य, बुराई से नेकी तथा दुराचरण से सदाचरण की ओर स्वतः अग्रसर होता है। इस प्रकार साधारण से साधारण मानव भी अपने सत्यकर्मों से आदर्श मानव बनता है और समाज का सही मार्ग दर्शन करता है।

सच तो यह है कि राम–कथा भारत के अलावा विश्व के अनेक देशों, खासतौर से एशियाई देशों में जन–मानस में काफी लोकप्रिय है। इन देशों में थाईलैंड, कम्बोडिया, मलेशिया, इंडोनेशिया तथा मारीशस आदि जैसे उल्लेखनीय हैं। इन सभी देशों में रामायण मेले बराबर होते रहते हैं।

चित्रकूट भारत का वह महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है, जहां श्रीराम ने अपने भाई लक्ष्मण और अपनी पत्नी सीता जी के साथ १२ वर्ष तक बनवास के दिन व्यतीत किये थे। यह वह पावन स्थली है, जहां आदिकवि महर्षि वाल्मीकि, तुलसीदास और रहीम ने भी वास किया था। रहीम के चित्रकूट की धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्ता की ओर संकेत करते हुए अपनी इन दो पंक्तियों में जो भाव व्यक्त किये हैं वह उल्लेखनीय हैं–

चित्रकूट में रम रहे, रहिमन अवध नरेश,
जापर विपदा परत है, सो आवत यदि देश।

चित्रकूट धाम में ही स्थित कामदगिरी पर्वत का भी अपना काफी महत्व है, जहां मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने वास किया था, जिसका उल्लेख महाकवि तुलसीदास ने इस प्रकार किया है–

कामद भे गिरी राम प्रसादा, अवलोकन अपहरत विषादा।

इसी नगरी में देवी मंदिर, राम–लक्ष्मण कुंड, जानकी कुंड, विराट कुंड तथा यहां की मन्दाकिनी नदी के तट पर स्थित सती अनुसुइया का आश्रम प्रमुख है।

इस अवसर पर मैं इतना कहूंगा कि पवित्र तीर्थ अयोध्या में जन्मे और चित्रकूट में बनवास व्यतीत करने वाले श्रीराम केवल अयोध्या, चित्रकूट अथवा देश एवं प्रदेश के ही नहीं हैं, बल्कि वे समस्त मानव जाति के हैं। वे किसी धर्म विशेष, जाति अथवा सम्प्रदाय के नहीं, वे हर उस व्यक्ति के हैं, जो उन्हें मन बिठाये और उनके आदर्शों पर चलने का संकल्प ले। यही कारण है भगवान श्रीराम घट–घट में वास करते हैं। वह अन्तरयामी और सर्वव्यापी

भी हैं। अतः श्रीराम को किसी स्थान विशेष तक सीमित रखना उनके आदर्शों के विपरीत है।

आज जरूरत इस बात की है कि उनके आदर्श जीवन के सभी पक्षों की जानकारी धर्म, जाति और क्षेत्र से ऊपर उठकर समस्त जन–मानस को दी जाये ताकि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और डा. राम मनोहर लोहिया जैसे अनेक महापुरुषों ने भारत में 'रामराज्य' का जो सपना देखा था, वह साकार हो सके और समस्त देशवासी निश्चिंत होकर सुखमय एवं शांतिमय जीवन व्यतीत कर सकें।

●

जीवन में प्रवृत्ति का दर्शनः गीता

गीता मानव जाति के लिए दिव्य संदेश है। यह किसी धर्म के लिए सीमित नहीं है। यह सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है। इसमें इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि गीता को प्रसारित हुए इतने अगणित वर्षों के बाद भी ऐसा दूरा ग्रंथ नहीं लिखा गया। इसीलिए गांधी जी ने एक बार लिखा थाः 'गीता शास्त्रों का दोहन है। गीता मेरे लिए केवल बाइबिल नहीं है, केवल कुरान नहीं है, मेरे लिए वह माता हो गयी है। जो इस माता की शरण लेता है वह उसे ज्ञानामृत से तृप्त करती है।' आज का युग विज्ञान का युग है। बड़े–बड़े आविष्कार हो रहे हैं। हमारा सारा जीवन विज्ञान से संचालित है। इसमें कोई संदेह नहीं कि विज्ञान ने हमें अनेक वरदान दिये हैं। यदि विज्ञान न होता तो जीवन इस रूप में न होता। पर दूसरी ओर विज्ञान में विनाशकारी शक्ति भी है। जहां विज्ञान ने दवा का आविष्कार किया है वहीं अस्त्र–शस्त्र भी बनाये हैं। इसका कारण यह है कि विज्ञान में साधन और साध्य means and ends में अन्तर नहीं है। यह होता है कि साधनों के प्रति उत्साह में हम साध्य को भूल जाते हैं। सही और गलत की अवधारणा विज्ञान के क्षेत्र में नहीं है। अणु की जो ऊर्जा विद्युत का उत्पादन कर जीवन का पालन करती है वही अणु बमं के रूप में जीवन को नष्ट भी कर देती है। अंततः मानव की भलाई सही और गलत के विवेक पर ही निर्भर करती है। संतुलित संस्कृति वही है जो ज्ञान और प्रज्ञान Knowledge and Wisdom में सामंजस्य स्थापित कर सके। भगवद्गीता ही ऐसा ग्रंथ है जो हमें साधन और साध्य में सामंजस्य स्थापित कर जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य को प्राप्त करने का ज्ञान देता है। दूसरी बड़ी समस्या जो हमारे सामने है वह मानव मात्र के बीच समन्वय की है। सभी मत, सभी धर्म एक ही बात कहते हैं। इस सत्य को समझने का आधार गीता है। इस कारण ऐसा समन्वय स्थापित करने के लिए गीता का विशेष महत्व है। गीता में बाहर से अलग–अलग समझ पड़ने वाले दार्शनिक सिद्धान्तों और धार्मिक चेतना का समन्वय किया गया है। गीता में धर्म की जिस मूल भावना पर बल दिया है वह न प्राचीन है, न आधुनिक। वह निरन्तर है, चिरस्थायी है। वह मानवता के भूत, वर्तमान और भविष्य सबमें विद्यमान है। भगवद्गीता ऐसा अद्भुत ग्रंथ है जो केवल धुरंधर विद्वान और दर्शन शास्त्र के पंडितों के लिए ही नहीं है। यह सबके लिए है। यह अपनी सामर्थ्य की बात है कि इस महासागर से कौन कितना प्राप्त कर सकता है। पर कुछ न कुछ सभी प्राप्त कर ही लेते हैं। डा. राधाकृष्णन ने कहा कि गीता ईश्वर के नगर में साधना मार्ग पर चलने वाले सभी तीर्थयात्रियों की आकांक्षाओं को मुखर करने वाला ग्रंथ है। हम सतत संघर्ष करते हैं, असफल होते हैं और आखिर गीता के माध्यम से वास्तविकता को समझ पाते हैं। लाखों लोग शताब्दियों से गीता से शांति प्राप्त कर रहे हैं। इस महान पुस्तक में स्पष्ट शब्दों में बिना हठधर्मिता के, बिना अवैज्ञानिक तथ्यों का सहारा लिए और बिना मनमानी कल्पना के आध्यात्मिक धर्म के सारभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट कर दिया गया है। इसी कारण गीता का प्रभाव प्राचीन काल में चीन और जापान तक और बाद में पश्चिमी देशों तक पहुंचा।

चीन और जापान में भारत से बौद्ध धर्म का महायान पंथ पहुंचा। इस पंथ के 'महायानश्रद्धोप...' और 'संद्धर्मपुंडरिका' ग्रंथ गीता से बहुत पभावित हैं। जर्मनी के धर्म शास्त्र के महान विद्वान जे. डब्ल्यू होओर ने कहा है कि जर्मन धार्मिक विश्वास में गीता का केन्द्रीय स्थान है। उन्होंने कहा कि यह कभी नष्ट नहीं होने वाले महत्व का ग्रंथ है:

A book of imperishable significance, it gives us not only profound insights that are valid for all times and religious life, but it contains as well the classical presentation of one of the most significant phases of Indo-Germanic religious history.

इंग्लैंड के विख्यात साहित्यकार और दार्शनिक आल्डस हक्सले ने एक पुस्तक लिखी है। जिसका नाम है Perennial Philosophy यानी शाश्वत दर्शन। इसमें उन्होंने विभिन्न धार्मिक पुस्तकों से उद्धरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि सभी धर्मों का मूल शिक्षा एक ही है। इस पुस्तक के प्रारंभ में हक्सले लिखते हैं–

The Gita is one of the clearest and most comprehensive summaries of the Perennial Philosophy ever to have been made. Hence its enduring value, not only for Indians, but for all manking.

गीता शाश्वत दर्शन की सबसे स्पष्ट और व्यापक संपेक्षिका है। यही इसकी अनश्वरता का कारण है। ईसा से ५०० वर्ष पूर्व महाकवि व्यास ने महाभारत के भीष्मपर्व में गीता का समावेश किया था। हिन्दू धर्म में उपनिषद और ब्रह्मसूत्र के साथ इसे प्रस्थानत्रय का भाग माना जाता है। गीता पर कितने भाष्य लिखे गये हैं। सब भाष्यकारों ने गीता में कुछ न कुछ विशिष्ट पाया है। भाष्यकार चाहे अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, या शुद्धौद्वैत मतों के हों सबने इसकी महानता प्रतिपादित की है। शंकर, आनन्द गिरी, श्रीधर, मधुसूदन, रामानुज और आधुनिक समय में बाल गंगाधर तिलक, स्वामी प्रभावानन्द, क्रिस्टोफर ईशरवुड ने गीता रहस्य को समझाया है। मध्यकाल में मराठा संत तुकराम और ज्ञानेश्वर ने इसके दर्शन को सरल रूप में प्रसारित किया। आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने तो जैसे निष्काम कर्म को जिया हो। श्री अरबिन्दो का दर्शन गीता से अत्यंत प्रभावित रहा। गीता निष्क्रियता का दर्शन नहीं है। गीता संसार को माया मानकर अलग हो जाने का उपदेश नहीं है। गीता निष्काम कर्म का दर्शन है। जब संशय, मोह और विषाद से ग्रस्त अर्जुन पांडवों और कौरवों की सेना के बीच हताश बैठ जाते हैं तब कर्म करने का उपदेश सारथी कृष्ण ही देते हैं:–

क्लेव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वध्युपपद्यते

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्ततेतिष्ठ परंतप।।

भगवान कृष्ण अर्जुन का आह्वान करते हैं कि तुम इस नपुंसकता को मत प्राप्त हो क्योंकि यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के

लिए खड़े हो जाओ। अर्जुन अपने स्वजनों, मित्रों, सहयोगियों के मोह में मतिहीन युद्ध भूमि में खड़े होकर अपने कर्तव्यों से विमुख हो गया। शरीर का मोह न हो इसके लिए भगवान कहते हैं–

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
यथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

देह के लिए क्या दुख करना। जैसे मुनष्य अपने पुराने वस्त्रों को छोड़कर नये वस्त्र धारण कर लेता है वैसे ही देह पुराने शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर में चली जाती है। अपने कर्तव्य से मोहवश पीछे क्यों हटना। कर्म में सफल होना या न होना महत्वपूर्ण नहीं है। महत्व कर्म का है, सुख–दुःख, लाभ–हानि का लेखा जोखा भी नहीं, सिर्फ कर्मः

'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवां पापमवाप्यस्यसि।।'

हमारा काम सिर्फ कर्म करना है। कर्म से प्राप्त फल की इच्छा से नहीं। कर्म अपने धर्म, कर्तव्य के पालन के लिए करना चाहिए। सिर्फ कर्म पर हमारा अधिकार है, इसके फल पर नहीं।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।'

हमारे देश और समाज के लिए इससे बढ़कर सन्देश क्या हो सकता है। संशय और हताशा त्यागकर हम कर्म में जुट जाएं। कर्म के फल की लालसा न करें। सिर्फ अपने कर्तव्य पालन की ओर उन्मुख हों। यही गीता की महत्ता है। यह हमारी सत्ता को पूर्ण करती है, ज्ञान को प्रकाशमान करती है और छिपी शक्ति को स्वतंत्र करती है। कहा गया है कि यह अज्ञानी को ज्ञान देती है, अशक्त को शक्ति देती है, पानी को क्षमा से मुक्ति देती है, दुःखी को कृपा की शांति देती है और दोषी को वात्सल्य देती है। शंकर ने अपने भाष्य में कहा है कि मुक्ति प्रज्ञा से होती है पर बिना शुद्ध हृदय के प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होती। इसलिए हृदय की शुद्धि के लिए वाणी, बुद्धि और शरीर को शुद्ध करो। अर्थात मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध रहो।

हमारे समय के लिए इससे बढ़कर क्या संदेश हो सकता है। देश की प्रगति के लिए कायरता और हताशा छोड़कर कार्य में जुट जाएं। देश की एकता के लिए मन, कर्म और बुद्धि को शुद्ध करें।

यहां अनेक विद्वान हैं। उनसे गीता का सार आपने प्राप्त किया होगा। उसे हम सब अपने जीवन में उतारें यही मेरी कामना है।

●

युवा सिर्फ नौकरी ही नहीं निहारें

दीक्षन्त समारोह की परम्परा वस्तुतः आदर्श भारतीय परम्परा है, जो पाश्चात्य देशों से आयातित नहीं है। भारत में वैदिक युग से ही शिक्षा समाप्ति पर दीक्षा समारोह का आयोजन होता रहा है। आचार्य अपने शिष्य को यह उपदेश देता था कि वह सत्य बोले, धर्म का अनुसरण करे तथा स्वाध्याय के प्रति सावधान रहे। विश्व सभ्यता के सन्दर्भ में यदि देखा जाए तो विश्वविद्यालय की अवधारणा का प्राचीनतम रूप भारत में ही देखने को मिलेगा। तक्षशिला, नालन्दा और विक्रमशिला की प्रसिद्धि से आप सुपरिचित हैं। शिक्षा किस प्रकार की हो, गुरु और शिष्य के मध्य संबंध कैसे हों, शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या हों– इन सभी विषयों पर पर्याप्त चिन्तन भारतीय मनीषियों ने वैदिक युग में ही कर लिया था।

शिक्षा का प्रमुख ध्येय मानव को ज्ञानवान बनाने के साथ ही चरित्रवान बनाना भी है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति, डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस संबंध में सही कहा था कि 'यह सोचना कि चरित्र, जो मनुष्य के रहन–सहन, रंग–ढंग सबको प्रभावित करता रहता है, वह अनायास ही बिना श्रम के ही ठीक ढल जाएगा एक दुराशामात्र है। इसलिए हमारे सारे कार्यक्रम में कुछ ऐसे क्रियात्मक प्रयोग अथवा उद्योग होने चाहिए जो चरित्र को ठीक ढांचे पर ढाले और सत्य के प्रति श्रद्धा, सेवा के प्रति प्रेम और निस्वार्थ में सच्ची स्वार्थपरता देखने की शक्ति देवे।'

आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत की एक सुसम्पन्न एवं आदर्श देश बनाने के उद्देश्य से देश की युवा–शक्ति को सशक्त और प्रबुद्ध बनाने के लिए उन्हें सुशिक्षित करने के साथ ही उनमें निर्भयता पैदा करने तथा उनकी संकल्पना शक्ति को भी सुदृढ़ करने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था कि–

I Suppose the vitality of a group, an individual or a society is measured by the extent to which it possesses courage and, above all, creative imagination. If that creative imagination is lacking, our growth becomes more and more stunted, which is a sign of decay.

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने भी स्वाधीनता आंदोलन में निर्भयता के साथ सक्रिय योगदान देने के लिए देशवासियों का इन शब्दों में आह्वान कया था–

First of all shed your fear. Do not be afraid, and then act in a united way but always peacfully. Do not bear any ill–will in your hearts against your opponent.

आज आप सभी में इन सद्‌गुणों का होना नितांत आवश्यक है।

वैदिक उपनिषद युग में शिक्षा के सम्बन्ध में गहन चिन्तन का ही परिणाम था कि चिन्तन और सृजनात्मकता की पराकाष्ठा पर हम उस युग में ही पहुंच चुके थे। ट्वायनबी ने भारतीय संस्कृति की चरम परिणति का युग वैदिक उपनिषद युग को ही माना है। इस युग में शिक्षा के संबंध में गहन चिन्तन का ही परिणाम था कि चिंतन और सृजनात्मकता की पराकाष्ठा पर हम उस युग में ही पहुंच चुके थे। ट्वायनबी ने भारतीय संस्कृति की चरम परिणति का युग वैदिक उपनिषद युग को ही माना है। इस युग तक भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों ने स्वरूप ग्रहण कर लिया था। वैदिक उपनिषद संस्कृति जिस भारतीय भू-भाग में विकसित हुई वह क्षेत्र प्राचीन समय में गुरु पांचाल के नाम से विख्यात था। मेरठ, दिल्ली और हरियाणा का क्षेत्र कुरु में सम्मिलित था। पंचालों की राजधानी थी अहिच्छत्र, जिसके अवशेष बरेली जिले की आंवला तहसील में स्थित रामनगर ग्राम में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार प्राचीन पंचालों के क्रिया कलापों का प्रमुख केन्द्र वर्तमान रुहेलखंड ही है, जहां आपका विश्वविद्यालय है। इसी क्षेत्र में भारतीय ज्ञान, विज्ञान एवं प्रज्ञान का चरम विकास हुआ था। उपनिषद दर्शन के विकास में पंचाल के प्रवाह जैवलि, प्रतर्दन, गार्ग्यायन चैकितायन एवं उद्दालक की प्रमुख भूमिका रही है। शतपथ ब्राह्मण के इनुसार अपने शुद्धतम उच्चारण के लिए विख्यात वेदपाठी पंडितों की संख्या पंचाल में कुछ सौ में नहीं, बल्कि सहस्रों में थी। मिथिला के दार्शनिक राजा विदेह जनक के दरबार में आत्मवादी दर्शन के प्रमुख प्रणेता ऋषि याज्ञवल्क्य को पंचाल से आमंत्रित किया गया था। पंचाल राजाओं के संरक्षण में स्थापित विद्वत्परिषद की यहां के बौद्धिक वैचारिक संस्कृति के निर्माण में आधारभूत भूमिका रही है। भारतीय दर्शन के भौतिकवादी चिन्तन के बीज भी यहीं के उद्दालक आरुणि के सिद्धान्तों में प्रस्फुटित हुये थे। भारतीय संस्कृति की प्रगतिशील मानसिकता एवं वैज्ञानिक तर्क पद्धति के सूत्रपात का श्रेय इस क्षेत्र की धरती को प्राप्त है। भारतीय कला के सुन्दरतम उदाहरण इसी क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। पंचाल के कवियों की मधुर और कर्णप्रिय रचनाओं तथा नाट्यकला की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। हर्षवर्द्धन के काल में आया चीनी यात्री ह्वेनसांग इस इलाके के विषय में लिखता है कि 'यहां के निवासी सत्यनिष्ठ थे तथा धर्म और विद्याध्ययन में उनकी विशेष अनुरक्ति थी।'

यह इलाका विभिन्न मतों और सम्प्रदायों का संगम स्थल रहा है। पंचाल भूमि निवास करने वाले शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन आदि सभी मत-सम्प्रदायों के मध्य यहां साम्प्रदायिक सद्भाव था। मध्यकालीन युग में हिन्दू मुसलमानों ने यहां प्रेम और सद्भावना के साथ मिल जुलकर कार्य किया है। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में खान बहादुर खां एवं शोभाराम के नेतृत्व में इस इलाके के हिन्दू-मुसमलानों ने डटकर मुकाबला किया था। बरेली नगर में साम्प्रदायिक एकता एवं धार्मिक सद्भाव की अपनी इस विरासत को आज तक संभाल कर रखा गया है, जबकि देश में आज अनेक तत्व इस महान परम्परा को नष्ट करने पर तुले हुये हैं, इन तत्वों का मुकाबला करना और देश को सही नेतृत्व प्रदान करना विश्वविद्यालय का

सर्वोच्च दायित्व है। विश्वविद्यालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समाज को एक ऐसी संस्कृति दें जिससे समाज का दूषित वातावरण शुद्ध हो सके। विश्वविद्यालयों को छात्र एवं छात्राओं को ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञान से युक्त बनाने के साथ ही उन्हें चरित्रवान और सर्वगुण सम्पन्न बनाना भी नितांत आवश्यक है। इस संबंध में डा. राजेन्द्र प्रसाद के कथन को उद्धृत करने का लोभ नहीं छोड़ सकता–

'ज्ञान के पहले साधारण ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो मनुष्य को जीवन संग्राम में सफल बना सके, जो उसके विवेक बुद्धि को इस तरह जागृत कर सके कि जो प्रश्न उसके सामने आये उसको वह समझ सके और आवश्यकतानुसार निर्णय कर सके, जो अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा को हमेशा जागृत रखे और जो प्रत्येक मनुष्य को उसको अपना स्थान समाज और देश में ठीक बता दे और जो उसमें अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठा जागृत कर दे।'

इसके अलावा डा. राजेन्द्र प्रसाद जी को यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों से शिक्षा ग्रहण कर उच्च उपाधियां प्राप्त करने वाली युवा शक्ति नौकरी की तलाश में इधर–उधर भटकती फिरे। इसीलिए उन्होंने साफ शब्दों में कहा था–

'कालेज तथा विश्वविद्यालय से निकले युवक का झुकाव नौकरी की ओर ज्यादा रहा है। वह वृत्ति अब छोड़नी चाहिए। विश्वविद्यालय का उद्देश्य लड़के और लड़कियों को सिर्फ नौकरी के लिए तैयार करना नहीं है, बल्कि ज्ञान को विकसित करने के लिए, राष्ट्र–निर्माण में हिस्सा बटाने के लिए और यहां की गरीबी, अविधा, अशिक्षा आदि को दूर करने के लिए है। साथ ही प्रकृति ने इस देश को जो सम्पत्ति दी है उसकी खोज निकाल कर उसको उपयोगी बनाना है। यह देश धन धान्य से परिपूर्ण है। हमारी अज्ञानता इसे खोज निकाल नहीं सकती। अब इसे आप को खोजना और देश को सुखी बनाना है।'

शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार की ओर उन्मुख करने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश में सबसे पहले आगामी वित्तीय वर्ष में प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों में कुल ३५ व्यवसायिक कोर्स आरंभ करने का निर्णय लिया गया है जिससे छात्र–छात्राओं को स्वावलम्बी बनाने का मौका मिलेगा। विश्वविद्यालय में कम्प्यूटर युक्त सूचना तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए राज भवन में दो करोड़ रुपये की लागत से अर्थ स्टेशन की स्थापना की जाएगी। इससे प्रदेश के सभी विश्वविद्यालय से शिक्षा पाये छात्र उस क्षेत्र से सम्बद्ध हैं, जिसने विवेक, तर्कसम्मत ज्ञान और साम्प्रदायिक सद्भाव के मूल्यों को आगे बढ़ाया है।

बात जब विवेक की है तो इस अवसर पर मैं भगवान महावीर की वाणी का उल्लेख करना चाहूंगा, जिन्होंने सुसुप्त और मायूस लोगों को यह मूल–मंत्र दिया था कि 'विवेक से चलो, विवेक से बैठो, विवेक से भोजन करो, विवेक से बोलो और विवेक से ही सोचो।' मैं यहां के शिक्षकों, विद्यार्थियों और नागरिकों से यह अपेक्षा करता हूं कि वे भारत की आदर्श सांस्कृतिक विरासत के सच्चे उत्तराधिकारी बनें और उच्च मानवीय मूल्यों के संरक्षण और संवर्धन की महती परम्परा का अनवरत निर्वाह करते रहें।

आज विश्वविद्यालयों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, किन्तु हमें समीक्षा करनी है कि क्या गुणवत्ता की दृष्टि से भी हम आगे बढ़े हैं। शिक्षा की तकनीक और सामग्री के स्वरूप, शिक्षकों की ओर विद्यार्थियों की किस्म, उपलब्ध सुविधाएं तथा प्रशासनिक ढांचे के रूप पर विश्वविद्यालयी शिक्षा का विकास निर्भर है। आशा है कि इन बिन्दुओं पर इस विश्वविद्यालय के शिक्षक, विद्यार्थी, कर्मचारी तथा इस नगर के नागरिक गहन चिन्तन करेंगे।

आप निरन्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते रहें। 'चरेवेति-चरेवेति' आपका आस्था पुंज बने, जिस लगन और परिश्रम से नव-स्नातकों, परास्नातकों तथा शोधार्थियों ने इस विश्वविद्यालय की परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं, उसी प्रकार आप आगे आने वाले जीवन की भी परीक्षा उत्तीर्ण करते रहें, यही मेरा आशीर्वाद है। आपका मार्ग शुभ हो- 'शुभास्ते सन्तु पन्थानः।'

आप सभी मिट्टी के इसी दिये की भांति संसार से अशिक्षा, अज्ञानता और अन्ध विश्वास के अन्धकार को दूर करें और अपने ज्ञानरूपी प्रकाश से समस्त जगत को ज्योतिर्मय करें।

●

युगदृष्टा डा. भीमराव अम्बेडकर

डा. भीमराव अम्बेडकर का नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। वे अत्यंत मेधावी और प्रखर विचारक थे, जो हमेशा लीक से हटकर सोचते थे। किसी भी मिथक को वे बिना तर्क के मानने के हामी नहीं थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन समता और मानवता की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। डा. अम्बेडकर, कबीर, महत्मा ज्योतिबा फुले और बुद्ध के गुणों का संगम थे। कबीर से उन्होंने भक्ति के गुण प्राप्त किये थे, महात्मा ज्योतिबा फुले से सामाजिक और आर्थिक उन्नयन के लिए डटे रहने का संकल्प प्राप्त किया था और गौतम बुद्ध से उन्होंने विराट दार्शनिक चेतना प्राप्त की थी। वे महान विद्वान, राष्ट्रभक्त, अर्थशास्त्री, राजनीति शास्त्र के अध्येता, विधिवेत्ता और इतिहासविद थे।

डा. अम्बेडकर का जन्म मध्य प्रदेश के नगर इन्दौर के निकट स्थित महू में १४ अप्रैल, १८९१ को हुआ था। डा. अम्बेडकर के दादा मालोजी संकपाल तथा पिता रामोजी महार रेजीमेन्ट में सैनिक थे, जिन्होंने डा. अम्बेडकर की शिक्षा–दीक्षा पर उपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया। डा. साहब का पारिवारिक नाम भीम रामजी अम्बावादेकर था, किन्तु बाद में अपने आदर्श आचार्य श्री अम्बेडकर के स्नेह और विद्वता से प्रभावित होकर अपने नाम के बाद अम्बावादेकर के बजाए 'अम्बेडकर' लिखना शुरू कर दिया।

डा. अम्बेडकर भारत में शिक्षा प्राप्त करने के बाद अमेरिका गये और वहां वर्ष १९१४ में कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की, जहां उनहोंने 'प्राचीन भारतीय व्यापार' नामक ग्रंथ लिखा।

डा. अम्बेडकर ने इसके बाद पी.एच.डी. के लिए दाखिला लिया और वर्ष १९१६ में 'ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्तीय व्यवस्था का उद्गम' नामक थीसिस लिखकर शिक्षा जगत में अपना सिक्का जमाया। डा. अम्बेडकर बड़े प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे, जिन्होंने अर्थशास्त्र, खासतौर से वित्त से संबंधित विषयों का गहन अध्ययन करने के बाद जब ये थीसिस प्रकाशित की तो तत्कालीन असेम्बली में बजट सत्र के दौरान उसके सदस्य इस महत्वपूर्ण ग्रंथ को अपने पास संदर्भ के लिए रखते थे। केवल इतना ही नहीं, हिल्टन और यंग कमीशन ने भारतीय मुद्रा के सुधार के सिलसिले में बयान देने के लिए डा. अम्बेडकर को जब बुलाया तो उस समय वहां उसके हर सदस्य के हाथ में यही किताब थी। इस बीच वे दो वर्ष बम्बई के सिडेनहेम कालेज में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर रहे।

इसके बाद डा. अम्बेडकर लन्दन स्कूल आफ इकोनामिक्स में पढ़ने गये, जहां उन्होंने डाक्टर आफ साइंस डी.एस.सी. की उपाधि प्राप्त की, जिसका विषय था– 'रुपये की समस्याएं और समाधान।'

डा. अम्बेडकर ने जर्मनी के बॉन विश्वविद्यालय में भी अध्ययन किया। उनकी मेधा ऐसी अद्भुत थी कि डी.एस.सी. करने के साथ–साथ एक और किताब लिखी जिसका नाम

है– 'ब्रिटिश भारत में वित्तीय व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण'। इसके अलावा इन दोनों महत्वपूर्ण कार्यों को सफलतापूर्वक करते रहने के साथ ही कानून की उपाधि भी हासिल करके उन्होंने कीर्तिमान स्थापित किया।

यह वह जमाना था जब पंजाब केसरी लाला लाजपत राय अमेरिका में मौजूद थे और कोलम्बिया विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में बराबर आते रहते थे। इसी पुस्तकालय में लाला जी को डा. अम्बेडकर द्वारा रचित पुस्तिका 'जाति व्यवस्था' पढ़ने का मौका मिला, जिसे पढ़ते ही उनके मन में डा. अम्बेडकर से मिलने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई और वह उनसे मिले और उनसे चर्चा की।

डा. अम्बेडकर को किताबों का बड़ा शौक था। अमेरिका में अध्ययन के दौरान वे दो हजार किताबें खरीदकर भारत लाये। इसी प्रकार जब लंदन से पढ़कर वापस लौटे थे तो तब ३४ बक्सों में किताबें भरकर भारत लाये। मालवीय जी ने बनारस विश्वविद्यालय के लिए दो लाख रुपये में इनकी किताबें खरीदना चाहा तो इन्होंने मना कर दिया। यह है उनकी महानता, विद्वता और पुस्तक–प्रेम की गाथा। डा. अम्बेडकर मानव स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता को राष्ट्र–उत्थान के लिए आवश्यक मानते थे। इस संबंध में वह कहा करते थे कि 'समाज में जब प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक रहने अपने रीति–रिवाज तथा धार्मिक व्यवस्था के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है, तभी राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भावना को बल मिलता है। वे राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने में अल्पसंख्यकों के साथ ही बहुसंख्यकों को भी अपनी जिम्मेदारी निभाने पर जोर देते रहते थे। इस सिलसिले में उन्होंने एक बार कहा था कि 'बहुसंख्यक लोगों का यह महान कार्य होगा कि वे भारत में रहने वाले सभी वर्गों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास करें।'

डा. अम्बेडकर राष्ट्रीयता पर भी हमेशा बल देते रहते थे। क्योंकि वे जानते थे कि 'बिना राष्ट्रीयता की भावना के राष्ट्रवाद नहीं हो सकता।' डा. भीमराव अम्बेडकर एक महान सुधारक और अच्छे पत्रकार भी थे। उन्होंने 'मूक नायक' नामक एक मराठी पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित की थी, जिसके दूसरे अंक में ही उन्होंने लिखा था कि 'भारत का एक स्वतंत्र राष्ट्र होना ही काफ़ी नहीं है अपितु धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से भी समता वाला देश बनना बहुत जरूरी है।' इसके अलावा उन्होंने इसी पत्रिका में यह भी लिखा था कि 'स्वराज्य में अछूतों के यदि मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं होते तो वह उनके लिए स्वराज्य नहीं होगा... स्वराज्य वही है, जिसमें मनुष्य सही मायने में मनुष्य की तरह रहे और जी सके।'

डा. अम्बेडकर का भारत के संविधान को बनाने में प्रमुखतम भूमिका होने के कारण उनका नाम हमेशा आदर और सम्मान के साथ याद किया जायेगा। भारत का संविधान प्रस्तुत करते हुए डा. अम्बेडकर ने कहा था कि 'स्वतंत्रता तो हमें मिली है, किन्तु भारत में समता का अभाव है। यहां के सामाजिक और आर्थिक जीवन में विषमता का बोलबाला है, इस विषमता को हमें शीघ्र ही मिटा देना चाहिए, अन्यथा बड़े परिश्रम से निर्मित हुआ यह लोकतंत्र का मंदिर मिट्टी में मिल जायेगा।'

इस अवसर पर उन्होंने देश की स्वाधीनता की रक्षा की जरूरत पर बल देते हुये देशवासियों का इन शब्दों में आह्वान किया था कि 'रक्त की अन्तिम बूंद तक हमें अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिए।'

डा. भीमराव अम्बेडकर महान व्यक्तित्व के धनी महापुरुष थे। वे सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक न्याय दिलाने के प्रबल समर्थक थे और इसके लिए वे जीवन भर संघर्षरत रहे। डा. अम्बेडकर पर लोग अक्सर यह इल्जाम लगाते रहते थे कि वह ब्राह्मण विरोधी हैं। हालांकि उन्होंने इस संबंध में साफ शब्दों में यह बता दिया था कि 'मैं व्यक्तिगत रूप से ब्राह्मणों का विरोधी नहीं हूं, बल्कि योग्य एवं मानवता के समर्थक ब्राह्मण मेरे अच्छे मित्र हैं, जो सुलझे हुए विचारों वाले भी हैं। मैं ब्राह्मणवाद का कट्टर विरोधी हूं। मेरी मान्यता है कि व्यक्ति अपने गुणों, ज्ञान एवं मनन–चिन्तन से महान बनता है, न कि कुल, जाति में जन्म लेने से।' इस सिलसिले में उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुये कहा था कि स्वराज्य की मांग से पहले सामाजिक समता सुनिश्चित की जाए। स्वराज्य, उसी प्रकार एक महार का भी जन्म सिद्ध अधिकार है जैसा एक ब्राह्मण का।

डा. अम्बेडकर ऐसा स्वराज्य चाहते थे, जिसमें मनुष्य सही मायने में मनुष्य की तरह रहे और जी सके। उन्होंने देश की स्वतंत्रता की रक्षा को एक विशिष्ट कर्तव्य बताते हुये कहा था कि स्वराज्य की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। अपने समाज में किसी प्रकार की फूट पुनः हमसे स्वराज्य छीन लेगी। अतः हमें छोटी–छोटी बातों में उलझना नहीं चाहिए और रक्त की अनतिम बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिए। आपस में यदि कोई मतभेद है तो उसे लेकर टकराना नहीं चाहिए, बल्कि सौहार्द के वातावरण में बातचीत के जरिये समस्या को हल कर लेना चाहिए। उन्होंने इस संदर्भ में संविधान सभा के अपने अन्तिम भाषण में कहा था कि 'हर समस्या का समाधान संवैधानिक होना चाहिए, अन्यथा अराजकता फैल जायेगी।'

मैं लोगों से कहना चाहूंगा कि डा. अम्बेडकर के समता और समानता पर आधारित शोषण रहित एक 'आदर्श भारत' के सपने को साकार करने में हम पूरी शक्ति से जुट जाएं। यह समय समाज विभाजन करने का नहीं है। यह जरूरी है कि हम स्वतंत्रता संग्राम के महान सेनानियों की अग्रिम पंक्ति में खड़े महात्मा गांधी जैसे महानायक डा. अम्बेडकर जैसे सामाजिक न्याय के प्रबल पक्षधर, पंडित जवाहर लाल नेहरू, डा. राम मनोहर लोहिया, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, वल्लभ भाई पटेल, गोविन्द बल्लभ पंत, मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई आदि से प्रेरणा लें। इन महापुरुषों में वैचारिक सौहार्द में कमी कभी नहीं रही।

●

मानवअधिकार:निज स्वायत्तता का संघर्ष

मानव अधिकारों के संबंध में आपने राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित कर अत्यंत सामयिक पहल की है। आज की दुनिया में यह अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। सर्वप्रथम इसकी प्रासंगिकता इसलिए है कि आज कोई देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक उस देश के नागरिकों में सामाजिक भेदभाव हो, असमानता हो, सबको न्याय पाने का अवसर न हो, अपने धर्म के पालन की स्वतंत्रता न हो, सभी नागरिकों को न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन न हो आदि। दूसरी ओर संचार साधनों में हुई क्रांतिकारी प्रगति के कारण सारा विश्व सिमट कर एक खगोल गांव बन गया है। जानकारी का संप्रेषण इतना तीव्र है कि दुनिया के किसी भी कोने की खबर दूसरे कोने तक पलक झपकते ही पहुंच जाती है। मानवाधिकार का विषय अन्तरराष्ट्रीय विषय है। इसलिए किसी देश में मानवाधिकारों के वास्तविक हनन का असर उस देश के अन्तरराष्ट्रीय संबंधों पर पड़ता है। किसी देश को प्राप्त होने वाली अन्तरराष्ट्रीय सहायता इससे प्रभावित हो सकती है। तीसरा, मानवाधिकारों के काल्पनिक हनन को अनेक देश अन्तरराष्ट्रीय शतरंज का मोहरा बनाने का प्रयास कर रहे हैं। पाकिस्तान और संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भारत को मानवाधिकारों के मामले में बदनाम करने के प्रयासों से हम वाकिफ भी हैं। चौथा, इस विषय की महत्ता इस लिए सर्वाधिक है कि यह समाज और राज्य का नैतिक कर्तव्य है कि हर व्यक्ति को मानवीय गरिमा से जीवन जीने का अवसर दिया जाए।

मानव अधिकारों का विषय आज किसी विचार धारा से बंधा हुआ नहीं है। और न ही किसी विचारधारा को इससे परहेज है। रूस के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री श्री एन्ड्रे सखारोव जिन्हें सोवियत यूनियन में अनेक यातनाओं का शिकार होना पड़ा के विचार उद्धृत करना चाहूंगाः–

'The ideology of human rights is probably the only one which can be combined with such diverse ideologies as communism, social democracy, religion, technocracy and those ideologies which may be described as national and endigenous. It can also serve as foothold for those who are tired of the abundance of ideologies, none of which have brought simple human happiness. The defence of human rights is a clear path toward the unification of people in our turbulent world, and a path toward the relief suffering.'

प्रश्न उठता है कि मानवाधिकार क्या? इसकी अवधारणा क्या है इसके लिए हमें इस अवधारणा को ऐतिहासिक विकास देखना होगा। प्राचीनकाल में यह दार्शनिक अवधारणा

थी। उदाहरण के लिए ऋग्वेद के पांचवें मंडल में ऐसे अनेक विचार व्यक्त किये गये हैं कि हम एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। विदेशी लोगों से नफरत न करें, पड़ोसी के विरुद्ध काम न करें, परिचितों और अपरिचितों को पर्याप्त सम्मान दें।

महात्मा बुद्ध ने, सम्राट अशोक ने, बादशाह अकबर ने, सभी मनुष्यों की समानता, सामाजिक भेदभाव दूर करने और धार्मिक दुराग्रह दूर करने पर जोर दिया। पर यद्यपि यह विचार उदात्त थे, ये कभी भी अधिकार के रूप में परिभाषित नहीं हुये।

प्राचीन रोम में भी प्राकृतिक विधान के विचार ने जन्म लिया। इसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह कहीं का भी क्यों न हो, कुछ प्रकृति अधिकार हैं। इन अधिकारों का अपहरण राज्य नहीं कर सकता। प्राकृतिक विधान से प्राकृतिक अधिकार का विचार यूरोप में तेरहवीं सदी में पुनर्जागरण काल से प्रारंभ हुआ जब सामन्ती व्यवस्था का अन्त हुआ। सामन्ती व्यवस्था के विरोध के स्वर उठने पर सम्पत्ति के अधिकारों की नए सिरे से परिभाषा हुई। इसका नतीजा स्वतंत्रता और समानता के विचारों का जन्म था। वास्तव में स्वतंत्रता और समानता मानव अधिकारों की नींव के पत्थर हैं। सन १२१५ में मैग्ना कार्टा द्वारा इंग्लैंड में शासक को सामान्यजनों के अनेक अधिकार मानने पड़े। १६२८ में पेटिशन आफ राइट्स और १६८९ में बिल आफ राइट्स द्वारा इस धारणा का और विकास हुआ। इन सबका प्रभाव यह हुआ कि शासकों के जो अधिकार ईश्वर प्रदत्त माने जाते थे उनमें कमी हुई और उस सत्ता से परे कुछ अधिकार माने गये।

बाद में राजनीति शास्त्रियों और दार्शनिकों ने प्रकृति प्रदत्त अधिकारों का विरोध किया। दार्शनिक विवेचना की दृष्टि से इसमें कमियां पाई गयीं। ब्रिटेन में राजनीतिज्ञ एडमंड वर्क और जर्मन दार्शनिक कार्लमार्क्स ने इसका विरोध किया। ब्रिटेन और यूरोप में नागरिक अधिकारों की अवधारणा ने जन्म लिया। इस संबंध में एडमंड बर्क के विचार स्पष्ट थे–

'If civil society is made for advantage of man, all the advantages of which it is made be come his rights.'

नागरिक अधिकारों में संवैधानिक अधिकार विधि द्वारा स्थापित अधिकार या पुराने समय से चली आ रही सामाजिक परिपाटी से दिये गये अधिकार हैं। नागरिक अधिकार एक कानूनी अवधारणा है इसमें नागरिकों की आर्थिक स्थिति या आपसी आर्थिक संबंधों का विचार नहीं है। वास्तव में १९वीं शताब्दी का समाजवादी विचार मानव अधिकार के लिए आंदोलन के रूप में प्रारंभ हुआ। मूलतः इसका स्वरूप आर्थिक नहीं था। १८४८ में कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में कार्लमार्क्स ने लिखा था कि– श्रमिक वर्ग के लिए मुक्ति का पहला कदम राजनीतिक लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए उनकी लड़ाई में जीत है। अर्थ व्यवस्था का मुद्दा इस प्रकार मानव अधिकारों की अवधारणा से जुड़ा। इसी समय उदारवादी दृष्टिकोण भी इससे आ जुड़ा। इसके अनुसार मानव अधिकार उन मूल मानवीय आवश्यकताओं से जुड़े हैं जिन्हें प्रत्येक मनुष्य को अनिवार्य रूप से प्राप्त करना चाहिए।

जाति, धर्म, देश, परम्परा, राष्ट्रीयता के भेदों से ऊपर उठकर सारी मानव जाति को प्राप्त है। मनुष्यों में जो भिन्नता है वह मानव जाति की संभावनाओं को उजागर करता है। पर हर मनुष्य के मस्तिष्क, चेतना मानवीय आवश्यकताओं और सामर्थ्य की जो धरोहर है वह हमारी मानवता का सार है। इसी दौरान फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति ने मानव अधिकार के विचार को नये आयाम दिये। फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व का विचार दिया। फ्रांसीसी क्रांति में यह विचारधारा अतिवाद में बदल गयी। अतिवाद के कारण उसने कानून के राज्य के विचार को त्याग दिया।अमेरिका में ४ जुलाई १७७६ को घोषित स्वतंत्रता के घोषणा पत्र में जैफ़रसन ने लिखा–

'We hold these truths to be self evident, that all men are created equal, that they are endowed by their creator with certain unalienable rights, that among these are Life, Liberty and the Pursuit of Happiness.'

२६ अगस्त १७८९ को लाफायत द्वारा लिखित मानव और नागरिकों के अधिकार के घोषणा पत्र में कहा गया था कि–

'Men are born and remain free and equal in rights. The aim of every political association is the preservation of the natural rights of man.'

उन्होंने स्वतंत्रता, सम्पत्ति पर अधिकार सुरक्षा और दमन के प्रतिरोध को मानव अधिकारों के अन्तर्गत माना है। स्वतंत्रता के अन्तर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठित होने की स्वतंत्रता, किसी भी धर्म के पालन करने की स्वतंत्रता और निरंकुश गिरफ्तारी और बंदीकरण से स्वतंत्रता को गिना गया। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति कार्टर ने सुख प्राप्ति के लक्ष्य में आवास, भोजन, स्वास्थ्य और शिक्षा को शामिल किया है। इस प्रकार प्राकृतिक अधिकार, नागरिक अधिकार, ब्रिटेन की शांति क्रांति से प्राप्त मैग्ना कार्टा, उदार, मानवतावाद,समाजवादी विचारधारा तथा फ्रांसीसी और अमेरिका क्रांति के विचारों तथा महिलाओं, अल्पसंख्यकों और दूसरी नस्ल के लोगों को वोट देने के अधिकार ने मानव अधिकारों की अवधारणा को पुष्ट किया। इन सब विचारों के योगदान से यह विचारधारा मजबूत हुई। भारत में भी १९वीं शताब्दी से नवजागरण काल प्रारंभ हुआ। राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर आदि ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए ठोस कदम उठाकर मानव अधिकारों की रक्षा की दिशा में उल्लेखनीय पहल की। सतीप्रथा, पर्दा और महिलाओं की अशिक्षा के विरुद्ध अभियान में अंततः महिला मुक्ति का द्वारा खोला। फिर इस शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन मानव अधिकारों के इतिहासस में एक स्वर्णिम अध्याय है। बाल गंगाधर तिलक ने 'स्वतंत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का उद्घोष किया। चम्पारण में नील आंदोलन, नमक सत्याग्रह, स्वराज्य की मांग द्वारा मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए जोरदार लड़ाई गांधी जी के सेनापतित्व में लड़ी गयी है। भारत के उदाहरण

से दक्षिण पूर्वी एशिया, अफ्रीका और अरब दुनिया में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध आंदोलन चले और असामनता, अन्याय, शोषण, नस्लवाद और रंगभेद की नींव पर बनी औपनिवेशिक अट्टालिकाएं ढह गयीं। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की समाप्ति और पेलेस्टाइन में शांति इसके ताजा उदाहरण हैं। जर्मनी में नात्सियों द्वारा किये गये हत्याकांड से स्तब्ध विश्व में मानव अधिकार आंदोलन को नयी चेतना मिली। द्वितीय विश्वयुद्ध के सामप्ति के बाद किसी सरकार द्वारा अपने ही नागरिकों के विरुद्ध किये गये अपराधों के विरुद्ध मुकदमा चलाकर जिम्मेदार व्यक्तियों को सजा देने का नया सिद्धान्त बनाकर प्रतिपादित किया गया। इन सब विचारधाराओं से और घटनाओं की परिणति मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा में हुई। १० सितम्बर १९४८ को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपनायी गयी इस घोषणा को अन्तरराष्ट्रीय मामलों में 'व्यक्ति' की विजय कहा जा सकता है। यह घोषणा एक मेनिफेस्टो है, उदात्त विचारों की अभिव्यक्ति है और मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त है। इस घोषणा के ३० परिच्छेदों में मानव अधिकारों पर सदियों की सोच का निचोड़ है। इसमें बिना राष्ट्र, धर्म, जाति आदि के भेदभाव के व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता, सुरक्षा और निष्पक्ष कानून के अधिकार दिये गये हैं। दासता, यातना, क्रूरता, अमानवीय अथवा अपमानजनक सजा, निरंकुश गिरफ्तारी, घर या परिवार में निरंकुश हस्तक्षेप को गैर कानूनी माना गया है। वयस्क स्त्रियों और पुरुषों को बिना जाति धर्म, या राष्ट्र के भेदभाव के विवाह कर परिवार बसाने का अधिकार दिया गया है। हर व्यक्ति को यह भी अधिकार है कि निरंकुश ढंग से कोई भी राज्य उनकी सम्पत्ति के अधिकार को या अभिव्यक्ति तथा धर्म के पालन के अधिकार नहीं छीन सकेगा। प्रत्येक व्यक्ति को या व्यक्तियों के समूह को शांतिपूर्ण संगठन का तथा अपने राष्ट्र की सरकार में हिस्सा लेने का अधिकार है। काम करने का अधिकार, समय-समय पर वेतन सहित अवकाश का अधिकार, ट्रेड यूनियन में शामिल होने का अधिकार, बराबर काम के लिए बराबर वेतन का अधिकार भी मानव के मूलभूत अधिकारों में हैं।इसके बाद १९७६ में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों तथा आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों से संबंधित प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये गये। इसी दौरान योरोपियन मानव अधिकारतंत्र, अन्तर अमेरिकन मानव अधिकारतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ। आशा है कि एशिया के देश भी ऐसी पहल करेंगे। हमारे देश के संविधान और कानून में इन अधिकारों को स्थान दिया गया है। भारत के संविधान के परिच्छेद १४, १७, १९ और २१ में मूलभूत अधिकारों को स्थान दिया गया है। कुछ समय पूर्व मानव अधिकारों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से मानव अधिकार आयोग का गठन किया है। अभी भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री रंगनाथ मिश्र इसके अध्यक्ष हैं। हमें कुछ क्षेत्रों में मानव अधिकारों के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिए अनेक प्रयास करने की आवश्यकता है।

●

शिक्षा और सामाजिक प्रतिबद्धता

प्राचीन काल से आगरा का विशिष्ट राजनीतिक तथा सांस्कृतिक महत्व रहा है। यह अत्यंत भव्य पुरातन भवनों, जिसमें विश्वविख्यात ताजमहल भी है, के लिए सारी दुनिया में जाना जाता है। मान्यता है कि ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना यहां हुई थी। प्राचीन ब्रज मंडल के १२ वनों में से एक वन यहां था। यहां प्राचीन शौरसेन देश में यदुवंशियों का गौरवशाली राज्य रहा है। ग्रीक लेखक एरियन ने ३०० वर्ष ईसा पूर्व में मथुरा तथा आगरा नगरों का उल्लेख किया है। यह २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जन्म स्थान भी है। किंवदंती के अनुसार वे भगवान श्री कृष्ण के पिता वासुदेव के बड़े भाई थे।

यहां शक, पार्थियन, **कुषाण** और गुप्त साम्राज्यों का राज्य विकसित हुआ। हुएन सांग, इब्न बतूता और बर्नियर जैसे विदेशी इतिहासकारों, जिन्होंने भारत में विस्तृत भ्रमण किया, ने इस क्षेत्र का वर्णन किया है। सन १५०५ में सफदर खान ने वर्तमान आगरा की नींव डाली। सिकन्दर लोदी ने यहां अनेक भवनों का निर्माण किया। इस समय अरब और ईरान से अनेक विद्वान यहां आ कर बसे।

प्रथम मुगल सम्राट बाबर की यहीं मृत्यु हुई और सन १५३० में उसे यहीं दफन किया गया। सन १५४० में उसके अवशेष काबुल ले जाये गये। महान मुगल शासक अकबर, जहांगीर और शाहजहां की राजधानी रहने का गौरव इसे प्राप्त हुआ। अकबर ने महान साम्राज्य स्थापित किया, भवन बनवाये और उसने धार्मिक सहिष्णुता की नींव डाली। दीन–ए–इलाही इसी ओर प्रयास था। 'जहांगीरी न्याय' के बारे में तो आपने सुना होगा। उसने एक लम्बी रस्सी लगाई थी जिसे खींचकर उसके महल में घंटा बजाकर कोई भी न्याय की फरियाद कर सकता था। अंग्रेजी शासन में सन १८३५ में इसे उत्तर पश्चिम प्रान्त की राजधानी बनाया गया तथा चार्ल्स मेटकाफ इसके प्रथम लेफ्टीनेंट गवर्नर हुए। इलाहाबाद के पहले उच्च न्यायालय भी यही था।

राधा स्वामी संप्रदाय का अभ्युदय भी यहीं हुआ। पंडित मोतीलाल नेहरू की यही जन्म स्थली है। प्रसिद्ध क्रांतिकारी **मदनलाल**दीक्षित की यह कर्मस्थली है।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन का मुख्यालय यहीं रहा। भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, जतिन्द्रनाथ दास, सुखदेव जैसे क्रांतिकारी बहुत समय यहां रहे। दिल्ली बम कांड का षडयंत्र यहीं रचा गया था। १९२९ में दिल्ली में विधानसभा में जो बम फेका गया था वह यहीं बना था। अनेक प्रख्यात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी यहां हुये। आध्यात्म, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में भी आगरा का विशेष स्थान है। जमदग्नि और परशुराम जैसे महर्षि यहां हुए। यहीं रुनकता का रेनुका क्षेत्र में सूरदास जैसे महाकवि ने भक्ति साहित्य का संवर्धन किया। अब्दुर्रहीम खान खाना, जो सम्राट अकबर के नवरत्नों में थे, ने बृज भाषा में अत्यंत मधुर काव्य की रचना की। कवि गंगा भी अकबर के दरबार में थे। मीर तकी मिर्जा

असदउल्ला खान गालिब का जन्म भी यहीं हुआ था। नजीर अकबराबादी का तो यह कर्म स्थल रहा। इतिहास के प्रसिद्ध ग्रंथ हुमायूं नामा, तबकात–ए–अकबरी, अकबरनामा, आइन–ए–अकबरी और तुजुक–ए–जहांगीरी जैसे ग्रंथों की रचना यहीं हुई। आगरा विश्वविद्यालय और उससे संबद्ध महाविद्यालय इस गौरवमयी परम्परा के वाहक हैं। यह महान थाती आपकी भी विरासत है। इस पर आपको गर्व होना चाहिए। इस विरासत को आगे बढ़ाने के उत्तरदायित्व का बोध भी आपको होना चाहिए। आज इस दीक्षांत समारोह में जिन मूर्धन्य मनीषियों को डाक्टर आफ लेटर्स तथा डाक्टर आफ साइंस की मानद उपाधि से सम्मानित किया जा रहा है, मैं उनका अभिनन्दन करता हूं। अन्यत्र व्यस्तता के कारण महामहिम भारत के राष्ट्रपति डा. शंकरदयाल शर्मा इस सभा को गौरवान्वित करने के लिए यहां स्वयं उपस्थित नहीं हो सके हैं। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, महान राजनेता, विधिवेत्ता, विचारक, शिक्षक तथा लेखक महामहिम डा. शंकरदयाल शर्मा का सम्मान कर विश्वविद्यालय ही सम्मानित हुआ है। प्रख्यात चिकित्सक तथा सर्जन डा. नवल किशोर ने न केवल अपने व्यवसाय में उच्चतम तथा श्रेष्ठतम स्तर प्राप्त किया है वरन शिक्षक के रूप में अनेक विख्यात चिकित्सकों को भी पैदा किया है। आपको अलंकृत कर विश्वविद्यालय स्वयं अलंकृत हुआ है। हिन्दी साहित्य में समालोचना के शिखर पुरुष पद्मभूषण डा. नगेन्द्र को उनके कालजयी अवदान के लिए सम्मानित कर विश्वविद्यालय के गौरव में ही वृद्धि हुई है और यह अलंकरण सम्मानित हुआ है।

मैं उन सब छात्र–छात्राओं का अभिनन्दन करता हूं जिन्हें आज उपाधि प्राप्त हो रही है। यह उनके जीवन का संक्रमण काल है। प्राचीन काल में शिक्षा ऋषियों के आश्रम में होती थी। उपनयन संस्कार के बाद बारह वर्ष तक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य का पालन कर कठोर अनुशासन में शिक्षा ग्रहण करता था। औपचारिक शिक्षा का अंत समावर्तन से होता था। विद्यार्थी को ब्रह्मचर्य के कठोर अनुशासन से मुक्ति प्राप्त होती थी। उस दिन उन्हें विद्यार्थी जीवन के चिह्न मिटाकर भलीभांति नहाकर अच्छे वस्त्र तथा आभूषण पहनने की अनुमति थी। इसी कारण उसे स्नातक कहा जाता था। स्नातक अर्थात जिसने स्नान किया हो। ब्रह्मचर्य का जीवन समाप्त कर उन्हें समाज में प्रवेश कर नया जीवन प्रारंभ करना होता था। इसके लिए गुरु उन्हें मंत्रोपदेश देते थे। इसी के लिए 'दीक्षा' शब्द का प्रयोग होता है। दीक्षा प्रदान कर जीवन के एक अयाय का अंत कर एक नया अध्याय दीक्षांत समारोह से प्रारंभ होता है। अंग्रेजी का Convocation शब्द इतना व्यापक नहीं है। अंग्रेजी Convoke का अर्थ होता है लोगों को एकत्र होने के लिए आहूत करना।

आज यहां आपके जीवन का एक अध्याय पूरा हुआ। औपचारिक शिक्षा आपने पूरी कर ली है। शिक्षा का तो कोई अंत नहीं होता। मनुष्य अंतिम समय तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। पर औपचारिक रूप से गुरुओं के मार्ग दर्शन में शिक्षा प्राप्त करने की अब आपको आवश्यकता नहीं है।

अपने जीवन में आपको अनेक परीक्षाओं का सामना करना पड़ेगा। आपके जीवन में परीक्षाएं और पुनः परीक्षाओं की श्रृंखला में यह परीक्षा एक कड़ी मात्र है। इसमें यदि आपका परीक्षाफल बहुत उत्साहजनक रहा है तो आपको इतना आत्मसंतुष्ट होने की आवश्यकता नहीं है कि आप भविष्य में प्रयास ही न करें। यदि आपका परीक्षाफल आपकी अपेक्षाओं से बहुत कम रहा है तो आपको निराश होकर प्रयास नहीं छोड़ देना चाहिए। विख्यात मनीषी अर्नाल्ड टॉयनबी ने कहीं कहा हैः-

'It is both **absurd** and unjust to classify a person, once for all, as being first class or third class when he is only twenty two years old. There are slow grwers who blossom late in life and conversely there are brilliant starters who fail to fulfil their early promise.'

आइंस्टन जैसे विख्यात नोबेल पुरस्कार विजेता बहुत पिछड़े विद्यार्थी थे और उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश भी नहीं मिला। वे पेटेंट आफिस में छोटे स्तर के कर्मचारी थे। पर अपनी लगन से नैसर्गिक प्रतिभा का विकास कर वह उस शिखर पर पहुंचे जहां और कोई नहीं पहुंच सका है। परीक्षाफल के आधार पर महात्मा गांधी और पंडित नेहरू के गौरवशाली भविष्य का भी कोई आभास नहीं होता था। आपकी अगली परीक्षा और भी कठिन होगी। आपको दृढ़ निश्चय के साथ उसके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

किसी समाज का चरित्र उसमें रहने वाले व्यक्तियों के चरित्र पर निर्भर करता है। न केवल समाज का वर्तमान वरन उसका भविष्य भी उसमें रहने वाले लोगों के व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। व्यक्तितव का निर्माण शिक्षा से होता है। इसीलिए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा थाः-

'A university stands for humanism, for tolerance, for reason, for the adventure of idea and for the search of truth. It stands for the onward march of the human race towards ever higher objectives. If the universities discharge their duties adequately, it is well with the nation and the people.

यदि हमारे विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में सब ठीक-ठीक रहेगा, मैं समझता हूं कि शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य मनुष्य को विवेकशील बनाना है। बिना विवेक के ज्ञान निरर्थक है। आज देश जिन कठिन घड़ियों से गुजर रहा है उसका बड़ा कारण सामुदायिक विवेकहीनता है। यह हमारे समय का कटु सत्य है कि शिक्षा विवेकशील नागरिक उत्पन्न करने के उद्देश्य में असफल रही है। समाज में घर कर रही धार्मिक असहिष्णुता और जातीय कटुता विवेकहीनता का सबसे बड़ा प्रमाण है। समय-समय पर उठ खड़े होने वाले भाषीय विवाद यही सिद्ध करते हैं कि हमारी शिक्षा में उस तत्व की कमी है जो युवाओं में राष्ट्रीयता की भावना भर सके। न्यू-टेस्टामेंट में कहा गया है : What

is a man profited if he shall lose his soul. सहिष्णुता की भावना शताब्दियों से हमारे चरित्र की मुख्य भावना रही है। भगवान बुद्ध ने कहा था कि वैर से वैर नहीं मिटता। वैर प्रेम से मिटता है और यही सनातन धर्म है:

न हि वेरेन वेरामि सम्मन्तीय कुदाचन
अवेरेन न च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो

महाकवि इकबाल ने भक्ति और प्रीति की भावना का विकास करने का आह्वान किया था:

सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती,
आ इक नया शिवाला इस देश में बना दें।
दुनिया के तीरथों से ऊंचा हो अपना तीरथ,
दामाने-आसमां से इसका कलश मिला दें।
शक्ति भी शांति भी भक्तों के गीत में हैं
धरती के वासियों की मुक्ति परीत में है।

मैं समझता हूं कि इस अवसर पर आपको निश्चय करना चाहिए कि आप प्रयास कर जीवन में उन संकीर्ण विचारों को स्थान नहीं देंगे जिससे धार्मिक, जातीय और भाषायी विवाद उत्पन्न होते हैं। आप अपने जीवन में राष्ट्रीय चरित्र और सभ्यता के उच्चतम आदर्शों से अनुप्राणित होते रहें ऐसा आपका प्रयास होना चाहिए। धर्म की अधूरी समझ के कारण ही ऐसे तनाव उत्पन्न होते हैं जिनका हम विगत एक दशक से अनुभव कर रहे हैं। डा. राधाकृष्णन के शब्दों में: 'We have enough religion to hate each other but not enough religion to love each other.'

हमारे समाज में अनायास ही बिना परिश्रम के सभी कुछ प्राप्त कर लेने के दिवा-स्वप्न देखने की प्रवृत्ति चिन्ता का कारण है। बिना कठोर श्रम के कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। भारत उसी का पक्ष लेता है जो प्रयास करता है। बैंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा है : Diligence is the mother of good luck. संस्कृत में एक सुभाषित है जो अपने विद्यार्थी जीवन में आप सबने सुना होगा यह आपके भावी जीवन में भी उतना ही लागू होता है जितना विद्यार्थी जीवन में:

सुखार्थिनो कुतो विद्या विद्यार्थिनो कुतः सुखम।

वर्तमान समाज में नयी सूचना व्यवस्था के कारण मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। ऐसे समाज की व्यवस्था केवल इस प्रकार प्रशिक्षित मस्तिष्क ही कर सकते हैं जो उपभोक्ता संस्कृति की निरर्थक मृग मरीचिका की वास्तविकता को समझ सकें। गीता में भगवान कृष्ण ने उपदेश देते हुए कहा है:

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।

चारों ओर से नदियों का पानी समुद्र में आकर मिलता है पर समुद्र अपनी मर्यादा में अचल प्रतिष्ठित रहता है। इसी प्रकार भोगों की कामना वाले को शांति नहीं मिलती। यही बात ईशावास्योपनिषद में कही गयी हैः

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधाः कस्यस्विद्धनम।।

दूसरी ओर यह हमारे समाज के प्रबंधकों और नीति निर्माताओं का दायित्व है कि समाज को दृश्य श्रव्य माध्यम से होने वाले उपभोक्ता संस्कृति के आक्रमण से बचाएं। दूरदर्शन पर सिनेमा में और समाचार पत्रों में जो चकाचौंध पैदा कर लुभाने वाले विज्ञापन प्रकाशित हो रहे हैं वह ऐसी उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दे रहे हैं जो न तो आर्थिक नीति की दृष्टि से उचित हैं और न ही नैतिक दृष्टि से। हमारे संसाधनों का उपयोग उत्पादक गतिविधियों के लिए होना चाहिए जिससे समाजोपयोगी अवस्थापना का निर्माण किया जा सके। हमारे सीमित संसाधनों का उपयोग विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन में नहीं होना चाहिए। नैतिक दृष्टि से भी यह अनुचित है क्योंकि इससे साधनहीन और साधन सम्पन्न व्यक्तियों के बीच जो खाई है वह और बड़ी हो रही है। २१ जनवरी १९४२ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने बनारस हिन्दू विश्विवद्यालय के विशेष दीक्षान्त समारोह में कहा थाः 'आप सादगी और गरीबी का पाठ सीखिये। आप यह कभी न भूलिये कि हिन्दुस्तान एक गरीब देश है और आप गरीब मां–बाप की संतान हैं। उनकी मेहनत का पैसा यों ऐशोआराम में बरबाद करने का आपको क्या हक है?' मेरी कामना है कि आप ऐसा चरित्र बल पैदा करने में सफल हों जिससे इस मृगतृष्णा के प्रलोभन से बच सकें। यही चरित्र हमें उस हताशा से बचा सकता है जिसके हम अक्सर यह मान कर शिकार हो जाते हैं कि जो कुछ होता है वह भाग्य से होता है, हमारे अपने प्रयासों से नहीं। शेक्सपीयर ने जूलियस सीजर नाटक में लिखा हैः

The fault dear Brutus, is not in our stars
But in ourselves....

हमारे सितारों में कोई कमी नहीं है। कमी अगर है तो हम ही में है।

शिक्षा की सामाजिक प्रतिबद्धता के संबंध में भी कुछ कहने के लिए यह उचित अवसर है। मुझे तंजानिया के राष्ट्रपति और प्रखर विचारक जूलियस न्येरेरे के विचार याद आ रहे हैं जिन्हें मैं उद्धृत करना चाहूंगाः 'हमारी शिक्षा को चाहिए कि वह बौद्धिक अहंकार के लोभ का विराध करे क्योंकि इस अहंकार के कारण सुशिक्षितजन उन लोगों को हीन समझने लगते हैं जिनके पास शैक्षिक योगयता नहीं होती या जिन में किसी प्रकार की विशेष योग्यता नहीं होती और जो केवल मनुष्य हैं। समान नागरिकों के समाज में इस प्रकार के अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं है।'

हमारी शिक्षा व्यवस्था में कहीं तो कुछ खामी है जिसके कारण यह नगरबद्ध हो गई है। क्या कारण है कि हमारे शिक्षित युवक अपनी जड़ों में नहीं लौटना चाहते? क्या कारण है कि हमारा समाज स्पष्ट रूप से नगरवासियों और ग्रामवासियों के बीच बंट गया है और

दोनों में संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गयी है? हमारी शिक्षा व्यवस्था ने अत्यंत श्रेष्ठ तथा उच्च स्तर के वैज्ञानिकों को उत्पन्न तो किया है पर क्या कारण है कि उनमें परायेपन की एलियेनेशन की भावना भी भर गई। इसी कारण हमारी इतनी श्रेष्ठ मानव संपदा का लाभ उस वर्ग को नहीं मिल सका जिसको इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी को हम लोकोन्मुखी नहीं कर सके हैं। जहां एक ओर आकाश में सेटेलाइट स्थापित करने की, मिसाइल छोड़ने की, सुपर कम्प्यूटर बनाने की आधुनिकतम तकनीकी का प्रयोग कर सकने का गौरव हमने हासिल किया है, वहीं हम बहुसंख्य लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। आज भी लगभग ७० प्रतिशत जनता अवस्थापना की कमी से घटिया जीवन स्तर पर रहने के लिए विवश है। अच्छी सड़कों का अभाव है, आदिम काल से बैल गाड़ी बिना परिवर्तन के वैसी ही चली आ रही है जैसी पहले थी, पीने के साफ पानी की निरंतर कमी होती जा रही है, ईंधन पाने के लिए दूरस्थ गांवों में महिलाओं को पूरे दिन श्रम करना पड़ता है, गांवों में हैंडपंप खराब हो जाये तो उसे ठीक करना असंभव हो जाता है और आज भी बहुसंख्य लोग उन बीमारियों के शिकार हो जाते हैं जिन पर काबू पाना बहुत मुश्किल नहीं है, कम से कम हमारी अत्यंत उच्च स्तर की प्रशिक्षित मानव सम्पदा को देखते हुए। यदि कमी है तो प्रतिबद्धता की, जिसके अभाव में हमारा युवा वर्ग अमेरिका और यूरोप में अवसरों की तलाश करता है और अपने घर को भूल जाता है। एक और खतरे से मैं आपको आगाह करना चाहूंगा। मेरा निश्चित मत है कि आगे आने वाले वर्षों में पर्यावरण का विनाश करने तथा प्रदूषण को न रोक सकने का खामियाजा हमें भरना पड़ेगा। जिस गति से हमारे देश में पर्यावरण का नाश हो रहा है वह अत्यंत चिन्ता का विषय है। वनों तथा जैविक सम्पदा का विनाश, जल एवं वायु का प्रदूषण, उपजाऊ मिट्टी का क्षरण, भूमि का ऊसर होना आदि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें गंभीरता से लेना चाहिए। आपने पढ़ा होगा कि दिल्ली में यमुना नदी के जल का परीक्षण करने पर वह स्तंभित कर देने वाला तथ्य सामने आया कि यमुना एक गंदे नाले की स्थिति में है। यह भी उस जगह जहां से दिल्ली शहर के लिए पीने का पानी लिया जाता है। दिल्ली पहुंचते–पहुंचते यमुना के प्रवाह को इतना रोक दिया गया है कि उसमें मूल जल धारा रह ही नहीं गयी है। गंगा कम प्रदूषित नहीं है। मध्य प्रदेश में पावन क्षिप्रा नदी बिल्कुल सूख गयी है। सारे देश में भू–जल स्तर निरंतर गिरता जा रहा है। प्रख्यात समाजशास्त्री और चिन्तक डा. श्यामाचरण दुबे के शब्दों में: 'परिवर्तनशील जीव मंडल में उठे खतरे विश्व भर में व्याप्त हैं। पर्यावरण प्रदूषण, पारिस्थितिक असंतुलन और संसाधनों की समाप्ति से मानव जीवन के लिए संकट उत्पन्न कर रहे हैं। उससे कुशलतापूर्वक निपटने और उन्हें नियंत्रित करने के लिए इच्छाशक्ति और कौशल दोनों की आवश्यकता है। लगता है कि मानव जाति को यदि अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो उसे जीवन–यापन के ढंग नये सिरे से सीखने होंगे। इस प्रक्रिया में शिक्षा एक सुनिश्चित और रचनात्मक भूमिका अदा कर सकती है।'

हमारे देश में आज २१० विद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा मान्य संस्थाएं हैं। महाविद्यालयों की संख्या लगभग सात हजार है। स्नातक और परास्नातक स्तर पर

विद्यार्थियों की संख्या लगभग ५० लाख है। पर आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि दुनिया में सबसे अधिक अनपढ़ व्यक्ति भारतवर्ष में हैं जिनकी संख्या ३५ करोड़ है। यानी रूस को छोड़कर बाकी यूरोप की जनसंख्या से अधिक। वर्ष १९४७ में हमारी जनसंख्या केवल ३२ करोड़ थी, जो आज ९० करोड़ तक पहुंच चुकी है और वर्ष २००१ तक यह १०४ करोड़ हो जायेगी। हमारी योजनाएं कहां तक सफल होंगी? क्या हमारे संसाधन इस जनसंख्या का बोझ उठाने के लिए सक्षम होंगे। मैंने इन मुद्दों का उल्लेख इसलिए किया कि इनसे हर नागरिक को जुड़ना चाहिए। विद्यार्थी जीवन में ही युवा वर्ग इन समस्याओं के समाधान में सार्थक योगदान दे सकते हैं। निरक्षरों को साक्षर बनाने के काम में जुट सकते हैं, पर्यावरण और जनसंख्या नियोजन के मुद्दों पर जन चेतना जागृत कर सकते हैं। ऐसा नहीं कि शिक्षाविदों को इसकी जानकारी नहीं है। गांधी जी, डा. जाकिर हुसैन, डा. जे.पी. नायक जैसे महान शिक्षाविदों ने समय-समय पर इन विषयों तथा शिक्षा को समाजोन्मुखी बनाने के संबंध में विचार व्यक्त किये हैं। पर उनके विचारों पर अमल नहीं होता। यह विडम्बना ही है कि एक तरफ शिक्षा की मांग बढ़ती जा रही है और दूसरी ओर शिक्षा प्रणाली को अच्छेदित और नष्ट किया जा रहा है। इस ओर हमारे शिक्षाविदों को ध्यान देना चाहिए। शिक्षा के माध्यम का मुद्दा भी हमें उद्वेलित करता रहा है। यह तो निर्विवाद है कि शिक्षा का माध्यम बहुत समय तक विदेशी भाषा नहीं रह सकती। मैं फिर गांधी जी के वर्ष १९४२ के अत्यंत विख्यात भाषण का उल्लेख करना चाहूंगा जो उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में दिया था: 'अंग्रेजों को हम गालियां देते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेजी के हम खुद ही गुलाम बन गये हैं। अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को काफी पामाल किया है। इसके लिए मैंने उनकी कड़ी से कड़ी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं जिम्मेदार नहीं समझता। खुद अंग्रेजी सीखने और बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी मेहनत करते हैं। अगर कोई हमें कह देता है कि हम अंग्रेजों की तरह अंग्रेजी बोल लेते हैं, तो मारे खुशी के हम फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? अंग्रेजी के प्रति इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है।' आज ५२ वर्ष बाद भी स्थिति कमोबेश वैसी ही है। मेरे विचार में इसका कारण यह है कि हमने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को इस लायक बनाने के लिए कोशिश नहीं की कि वह आधुनिकतम विषयों और विचारों का संप्रेषण कर सकें। इजरायल में हिब्रू भाषा को अपनाया गया। जापान और चीन में अपनी भाषाओं को अपनाया गया जबकि इनकी लिपियां देवनागरी की तुलना में कठिन हैं। पर इसके लिए सुनियोजित प्रयास किया गया। अकादमियों की स्थापना की गई उन्होंने परिश्रम कर ज्ञान-विज्ञान को मातृ भाषा में अनूदित किया। फ्रांस में आज भी भाषा के विकास के लिए अकादमी है जो निरन्तर भाषा की शुद्धता के लिए निष्ठापूर्वक प्रयास करती है। यह काम हम नहीं कर सके। अब हमें दुगुनी मेहनत से इसे करना चाहिए। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में शब्दावली गढ़ी जाए जो केवल अंग्रेजी की छाया मात्र न हो। अच्छी और स्तरीय पाठ्य पुस्तकें लिखवाई जाएं। सबसे बढ़कर यह कि निष्ठापूर्वक इस काम को अंजाम दिया जाए।

मैं यह नहीं कहता कि अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओं को पढ़ना बंद कर दिया जाए। हमारे देश में अंग्रेजी की शिक्षा की परम्परा है और इसके लिए अवस्थापना भी है। अतः उसे जारी रखना चाहिए ताकि हम उस भाषा में प्रकाशित नये से नया ज्ञान हासिल कर सकें। पर मुख्य पढ़ाई तो भारतीय भाषाओं में ही होनी चाहिए।

मेरी तो यह मान्यता है कि अंग्रेजी के अलावा एशियाई भाषाओं के अध्ययन का अवसर भी हमारे छात्रों को मिलना चाहिए। चीन, जापान, थाईलैंड, इंडोनेशिया, वियतनाम आदि से हमारे ऐतिहासिक संबंध रहे हैं। इन सभ्याताओं से हमारा कितना महत्वपूर्ण आदान–प्रदान होता रहा है, यह सभी जानते हैं। बौद्ध धर्म भारत से इन देशों में गया। आज भी थाईलैंड की रामलीला विश्वविख्यात है। इन सांस्कृतिक संबंधों को बनाये रखना है। इसका एक और कारण मेरी समझ में आता है। संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथ प्राकृतिक कारणों से नष्ट हो चुके हैं। यह ग्रंथ अनुवाद के रूप में आज भी पड़ोसी देशों की भाषाओं में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए मोक्ष शंकर गुप्त का 'तर्क भाष्य' केवल तिब्बती में उपलब्ध है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जैसा महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध किया था।

विश्वविद्यालयों में अनुशासन स्थापित करने और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रदेश सरकार कटिबद्ध है। इस ओर हमने अनेक कदम उठाये हैं जिसके सार्थक परिणाम सामने आने लगे हैं। विश्विवद्यालयों के कुलपतियों की तीन बैठकें शासन स्तर पर की जा चुकी हैं। पिछली बैठक में विश्वविलया अनुदान आयोग के सचिव और अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद के अध्यक्ष भी उपस्थित थे। विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थिति में इससे निश्चित सुधार होगा। व्यावसायिक पाठ्यक्रम बड़ी संख्या में प्रारंभ किये जाएंगे। एकेडेमिक कलेंडर बनाया जा रहा है ताकि शिक्षा सत्र समय पर चल सके। प्रादेशिक स्तर पर उच्च शिक्षा परिषद की स्थापना की जा रही है। पर अंततः शिक्षा अवस्था में सुधार शिक्षकों के सहयोग के बिना संभव नहीं है। मेरी शिक्षक समुदाय से तथा विद्यार्थियों से अपील है कि वे शिक्षा व्यवस्था सुधारने में पूरा सहयोग करें। अन्त में मैं महाकवि दिनकर की प्रेरणादायक पंक्तियों से अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं–

तूं तरुण देश से पूछ अरे, गूंजा यह कैसा ध्वंस राग।
अम्बुधि–अन्तस्तल–बीच छिपी यह सुलग रही है कौन आग?
प्राची के प्रांगण–बीच देख जल रहा स्वर्ण–युग–अग्नि ज्वाल।
तू सिंहनाद कर जाग तपी! मेरे नगपति! मेरे विशाल!
ले अंगड़ाई उठ, हिले धरा, कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट्! हुंकार भरे, फट जाए कुहा, भागे प्रमाद।

पत्रकारिता की सीमा

यह कहना कि आज हम एक चुनौती भरे दौर से गुजर रहे हैं एक प्रकार का क्लीशे (cliche) बन गया है। पर पत्रकारिता के संदर्भ में मैं इसे अवश्य दोहराना चाहूंगा, क्योंकि आज सबसे बड़ी चुनौती पत्रकारों के समक्ष है। इसका कारण मीडिया में हुई तकनीकी क्रांति है। आज सारा संसार एक खगोल गांव बन गया है। विश्व के किसी कोने में किसी समय होने वाली घटना किसी भी क्षण देखी जा सकती है। रुपर्ट मरडाक जैसे लोगों ने इस क्षेत्र में आधुनिकतम तकनीक का प्रयोग करके एक नये वातावरण का निर्माण किया है, जिसमें प्रतिस्पर्धा को बहुत बढ़ावा मिला है। इस अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति के कारण पत्रकारिता और पत्रकारों के समक्ष नैतिक मूल्यों का गहरा संकट पैदा हुआ है।

जहां एक ओर तकनीकी प्रगति के कारण मीडिया का प्रसार बढ़ा है, वहीं समाचार पत्रों का प्रकाशन व्यय साध्य हो गया है। समाचारों के संकलन और उसके तुरन्त प्रसारण के कारण व्यय भार बहुत बढ़ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी कारण आज समाचार पत्रों के बीच प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए कुछ अस्वस्थ होड़ सी लगी हुई है। इस कारण कभी–कभी समाचार पत्रों व पत्रकारों को ऐसे साधनों का उपयोग प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए करना पड़ता है जो इस पुनीत कार्य के अनुरूप नहीं है। इस संबंध में हमें निश्चित रूप से सोचना होगा और ऐसी अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने पर विचार करना होगा।

दूसरा विचारणीय मुद्दा यह है कि पत्रकारिता की सीमा कहां समाप्त होती है और कहां निजी जीवन प्रारंभ होता है। आज निजी जीवन पर आक्रमण जिसे Invasion Privacy कहा जाता है, बहुत अधिक बढ़ गया है। समाचार पत्रों का दायित्व सामाजिक है और जहां किसी व्यक्ति विशेष के निजी जीवन का सामाजिक व्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वहां उसे कलंकित करना पत्रकारिता का काम नहीं होना चाहिए।

इंग्लैंड में टैबलाइड प्रेस ने राजघराने के सदस्यों के निजी जीवन में दखल देकर जैसा वातावरणं निर्मित किया उससे इंग्लैंड की अति उदार सरकार को भी प्रेस पर प्रतिबंध लगाने के बारे में सोचना पड़ा। मुझे विश्वास है कि यहां उपस्थित सभी प्रखर पत्रकार इस पर विचार करेंगे कि किस प्रकार निजी जीवन की गोपनीयता को भंग न करने के आदर्श की रक्षा करते हुए सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाया जाए।

१९६० के दशक में कनाडा के संचार माध्यमों के दार्शनिक मार्शल मैकलुहान ने कहा था कि 'माध्यम ही संदेश है' अर्थात जो भी आज के युग में मीडिया से प्रसारित होता है, उसे ध्रुव सत्य मान लिया जाता है। ऐसे में आपका दायित्व और भी बढ़ जाता है, विशेषकर आज के समाज में विचारधारा के बढ़ते ह्रास और फासी प्रवृत्तियों के बढ़ते हुए प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुए।

समाज पर प्रभाव डालने वाले सभी कामों का हर कोण से निष्पक्ष और खरा परीक्षण करना पत्रकारों का काम है। जहां ऐसी जानकारी न मिले उसे खोजकर उद्घाटित करना उनका कर्तव्य है। इस अवसर पर मुझे लॉर्ड नार्थक्लिफ की उक्ति याद आती हैः

News is what somebody somwhere wants to suppress. Everything else is advertising.

ऐसी बात जिसे कोई कहीं छिपाने की कोशिश कर रहा हो और उसका समाज पर प्रभाव पड़ता है, उसे किसी भी प्रकार खोज कर लाना और उद्घाटित करना आपका काम है।

इसी संदर्भ में मैं कहना चाहूंगा कि निष्पक्ष और उत्तरदायी पत्रकारों की कर्तव्यपालन में सहायता करने और उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के लिए शासन कृत संकल्प है। पत्रकारों के उत्पीड़न को रोकने तथा पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही उन्हें निःशुल्क बस यात्रा एवं चिकित्सा सुविधा के साथ ही आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने का भी प्रयास किया जा रहा है। प्रदेश सरकार ने भारतीय जीवन बीमा निगम तथा प्रमुख पत्रकार संगठनों से परामर्श के बाद पत्रकार पेंशन योजना शुरू की है। इसके अंतर्गत पूर्णकालिक श्रमजीवी पत्रकारों के लिए 'जीवन धारा योजना' तथा 'सामूहिक जीवन बीमा योजना' भी प्रारंभ की गयी है, ताकि पत्रकार बन्धुओं को ज्यादा से ज्यादा राहत मिल सके।

हमारे देश में स्वतंत्रता के पूर्व पत्रकारिता की ऐसी ही भापना और मर्यादा रही है। भारत में पत्रकारिता के इतिहास पर अगर आप नजर डालें तो यह साफ पता चलेगा कि भारतीय पत्रकारिता ने सन १८५७ की क्रांति तथा उसके बाद स्वाधीनता आंदोलन के दौरान देशवासियों में क्रांति की ज्वाला प्रज्जवलित करने में जो अद्वितीय योगदान दिया, उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता है। जहां एक ओर राजा राममोहन राय ने 'संवाद कौमुदी' नामक बंगाली पत्रिका तथा फारसी के 'मिरातुल अखबार' के माध्यम से अंग्रेज शासकों की दमनकारी गतिविधियों के विरुद्ध न केवल आवाज बुलन्द की, बल्कि देसी पत्रकार विरोधी प्रेस कानून के विरुद्ध सन् १८२३ में ही अपने इस फारसी अखबार को विरोध प्रकट करते हुए बन्द कर दिया। इसी प्रकार सन् १८५७ की क्रांति में मौलवी बाकर ने अपने 'देहली उर्दू' अखबार के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों को जन-जन पहुंचाने में सराहनीय योगदान किया और मातृभूमि की आजादी के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

केवल इतना ही नहीं, सर सैय्यद अहमद खां ने अलीगढ़ साइंटिफिक गजट के साथ ही तहजीबुल एखलाक जैसी उच्च कोटि की उर्दू पत्रिका प्रकाशित करके देशवासियों में नवचेतना जागृत की तथा एखलाकी कद्रों को बढ़ावा दिया। ठीक इसी प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' जैसी उत्कृष्ट साहित्यिक पत्रिका का सम्पादन करके देश में एक जबरदसत सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आंदोलन का सूत्रपात किया। इसके अलावा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक, पंडित जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद और मौलाना मोहम्मद अली जैसी असंख्य महान पत्रकार विभूतियों ने समय-समय पर समाचार पत्र अथवा पत्रिकाओं का प्रकाशन करके

देशवासियों का सही मार्गदर्शन किया। प्रसन्नता की बात है कि हमारे सभी पत्रकार बंधु पूरी तत्परता, निष्ठा एवं निष्पक्षता के साथ शासन और जनता के बीच एक सशक्त माध्यम के रूप मे प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। देश को आपसे बड़ी अपेक्षाएं हैं। इसलिए आप सभी देश के मौजूदा नाजुक हालात को नजर रखते हुए अपने समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में समाचार, लेख और सम्पादकीय आदि में ऐसे रचनात्मक लेखन को प्राथमिकता दें, जिससे भारत की स्वतंत्रता, एकता और अखंडता अक्षुण्ण बनी रहे और भारतीय संविधान में प्रभुत्व सम्पन्न तथा समता एवं समानता पर आधारित महान भारत का जो सपना देखा गया है वह पूर्ण रूपेण साकार हो सके। पत्रकार बंधुओं को देश एवं विदेश में चल रहे जन कल्याणकारी विकास कार्यों से संबंधित जानकारी भी जनता तक पहुंचाने का कार्य यथावत जारी रखना चाहिए ताकि कार्यान्वित योजनाओं का लाभ अंतिम छोर पर खड़े हुए व्यक्ति को भी मिल सके। समाचार पत्रों का सर्वप्रथम समाज के प्रति अपना एक विशेष दायित्व है। समाचार पत्र समाज में जन मत निर्माता Opinion Makers की हैसियत रखते हैं। आप सब जानते हैं कि छपे शब्दों पर सामान्य जन की कितनी आस्था है और उसका जनमत पर कितना प्रभाव पड़ता है। इसी कारण से इस चुनौती भरे समय में समाचार पत्रों का उत्तरदायित्व सामान्य समय की अपेक्षा अब कई गुना अधिक है। ऐसे हर अवसर पर जब मुझे पत्रकारों या समाचार पत्रों के मालिकों से मुखातिब होने का मौका मिलता है तो मैं यह कहता रहता हूं कि विचारधारा का ह्रास होने के कारण फासीवादी प्रवृत्तियों को बहुत बढ़ावा मिलता है। इस अवसर पर भी मैं इसे दोहराना चाहता हूं। इसका हमें डटकर सामना करना होगा। जो हमारे संविधान की धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा है, उसकी हमें रक्षा करनी होगी। हमारे संविधान की प्रस्तावना में ही भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घेषित किया गया है। इसलिए साम्प्रदायिकता फैलाने वाली ताकतों का डटकर मुकाबला करना हमारा और आप सभी का संवैधानिक दायित्व है।

साम्प्रदायिकता की चुनौती का सामना करने का भाषाई पत्रकारिता का गौरवशाली इतिहास रहा है। 'प्रताप' किसी समय में उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख समाचार पत्र रहा है। इसके सम्पादक श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने साम्प्रदायिक फसाद के दौरान अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। दिल्ली में वीर अर्जुन के संस्थपक सम्पादक स्वामी श्रद्धानन्द ने ऐसे ही अपने प्राण न्यौछावर कर दिये, जब वह साम्प्रदायिक सद्भाव की चर्चा कर रहे थे। इस परम्परा को न केवल बनाये रखना है, वरन आज इसे और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। सद्भावना और भाईचारे की जो शानदार परम्परा हमारे देश की है उसके नष्ट होने पर देश भी नहीं बच सकता। साम्प्रदायिक उन्माद के जहर को देश के रक्त में घुलने न दें, यह पत्रकारिता जगत की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है, जिसे पूरी निष्ठा, ततपरता और निष्पक्षता से निभाना है। इधर समाचार पत्रों में समाचारों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने तथा सनसनीखेज खबरों पर अधिक निर्भर करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। विकास तथा ग्राम्य क्षेत्रों से संबंधित समाचारों के लिए समाचार पत्रों में स्थान ही नहीं रहता। न्यूयार्क टाइम्स के मास्ट हेड पर लिखा रहता है 'All the news that is fit to print' यानी इस अखबार में सारे

वह समाचार छपते हैं जो छपने लायक हैं। बहुत सी वीभत्स खबरें हैं जिनको छापने से कोई सामाजिक सरोकार पूरा नहीं होता। दूसरी ओर विकास और ग्राम्य जीवन से संबंधित समाचार ऐसे हैं, जिनका प्रकाशन समाज के हित में है। इस ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देने की जरूरत है। समाचार पत्रों में नगरों और महनगरों में घटित होने वाले घटनाक्रम से संबंधित समाचारों को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं को प्रकाशन योग्य नहीं समझा जाता है और अनदेखा किया जाता है। इस प्रवृत्ति में भी बदलाव आवश्यक है। भारतीय जनतंत्र में पत्रकारिता को चतुर्थ स्तंभ की संज्ञा दी गई है। यह पत्रकारिता, जिसे भारत में एक मिशन के रूप में शुरू किया गया था, अब इसमें काफी बदलाव आ गया है। पत्रकारिता का सबसे प्रमुख ध्येय जनता की आवाज को शासन तक पहुंचाना तथा शासन की नीतियों, निर्णयों तथा कल्याणकारी कार्यों की जानकारी समय से जनता को देना रहा है। भारतीय संविधान में अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता है। अतः अभिव्यक्ति की इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग पूर्णतया संविधान के विरुद्ध है। आज इनवेस्टिगेटिव जर्नलिज्म यानी 'खोजी पत्रकारिता' के नाम पर बेगुनाह लोगों पर कीचड़ उछालना, निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी को ब्लैकमेल करना, धमका कर अथवा बदनाम करके अपना काम निकालना, किसी के निजी जीवन में हस्तक्षेप करना एक आम बात बनती जा रही है। यदि पीत पत्रकारिता के इस बढ़ते हुए रुझान को रोका नहीं गया तो वह राष्ट्र और समाज के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होगा। हम एक दशक पूर्व की पत्रकारिता के आदर्श पर नजर डालें तो यह साफ नजर आयेगा कि उस समय पत्रकार हमेशा इपर्सनल जर्नलिज्म की छवि को बनाये रखने के लिए रचनात्मक एवं मानव उपयोगी लेखन को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे, किन्तु आज स्थिति यह हो गई है कि अब पर्सनल जर्नलिज्म को अपेक्षाकृत अधिक बढ़ावा मिल रहा है। एक समय था जब पत्रकार गलत कार्यों की डटकर भर्त्सना करते थे और हर उस बुराई को उजागर करते थे, जिससे देश अथवा समाज को कोई नुकसान पहुंचाने का अंदेशा नजर आता था। केवल इतना ही नहीं बल्कि समाचार पत्रों में किसी भी समाचार को उस समय तक प्रकाशित नहीं करते थे, जब तक उसकी सत्यता की पुष्टि न हो जाए अथवा उसकी संदिग्धता बिल्कुल समाप्त न हो जाए। भारत में चार पांच दशक पूर्व पत्रकारिता का जो आदर्श था, उसमें धीरे-धीरे ह्रास होता रहा है। पहले समाचार पत्र में जो कुछ छपता था उसका जनता पर काफी प्रभाव पड़ता था। राष्ट्रवादी समाचार पत्रों में अंग्रेजों के विरुद्ध कोई आलोचना छपती थी तो अंग्रेज शासकों में कुछ न कुछ घबराहट अवश्य पैदा होती थी। समाचारपत्र में जो कुछ छपता था, उसे सच समझा जाता था। लेकिन आज स्थिति इतनी बदल गई है कि समाचार पत्रों में छपने वाली घटना अथवा शिकायत पर पाठक आसानी से यकीन नहीं कर पाता। प्राचीन और वर्तमान पत्रकारिता के इस अंतर को समय रहते मिटाना होगा, तभी पत्रकारिता के आदर्श सिद्धांतों को बढ़ावा मिलेगा और पत्रकारिता की छवि बेहतर होगी।

●

समाज निर्माण में साहित्यकारों की भूमिका

वास्तव में संस्थाओं के प्रयास से साहित्य का विकास होता है। सरकारी प्रयास से साहित्य का विकास नहीं हो सकता। कहा जाता है कि फ्रांस के महान शासक नेपोलियन से एक बार किसी ने कहा कि फ्रांस में कवि ही नहीं रहे। नेपोलियन ने कहाः 'अरे', आपने मुझे क्यों नहीं बताया। मैं अपने आंतरिक मामलों के मंत्री से कह दूंगा कि वे इस बारे में कुछ करें।' एक महान योद्धा और प्रशासक को यह नहीं मालूम था कि शासन के आदेश से कवि नहीं पैदा होते। ऐसी गलती आज भी कुछ लोग करते हैं। पर अब अधिकांश लोग जान गये हैं कि साहित्यकार की स्वायत्तता सत्ता है और वह किसी नियंत्रण से परे है। तुलसीदास जी ने भी ऐसे कवियों को फटकारा था जो राजदरबार की ओर देखते थे। स्वयं उन्होंने कहाः

हम चाकर रघुबीर के पट्यौ लिख्यौ दरबार।
तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार।
कवि कुम्भनदास ने भी कह दियाः
संत को कहां सीकरी सौ काम?
आवत–जात पनहिंया टूटीं, बिसरि गयो हरिनाम।

हिन्दी प्रचारिणी समिति जैसी संस्थाओं के हाथ में ही साहित्य सुरक्षित है।

हमारी संस्कृति में साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं का महत्व शताब्दियों में समझा गया है। तभी यह कहा गया हैः 'साहित्य, संगीत तथा कला से विहीन व्यक्ति पूंछ और सींग के बिना पशु जैसा है।' यानि वह पशु तो है ही, वह भी विकृत। साहित्यकार समाज का अन्तःकरण है। वे न केवल अतीत से बने हैं। न केवल वर्तमान के धारक हैं, वरन भविष्य के निर्माता भी हैं। अपने शब्दों से वाक्यों से– रसात्मकम वाक्यम– वे मनुष्य का मन बदल सकते हैं। साहित्य केवल तथ्यों का दर्पण ही नहीं है। वह केवल समाज का दर्पण मात्र नहीं है। वह मूल्यों का वाहक भी है। महान साहित्य भावप्रवण अनुभव से उत्पन्न होता है। जब हम अनुभव करते हैं, उस पर विचार करते हैं, चिन्तन करते हैं, तब साहित्य जन्म लेता है। तभी तो साहित्यकार का महत्व है। वह अपने अनुभव को आत्मसात कर, अपनी सृजन की प्रक्रिया से उसे निकालकर बाहरी दुनिया को सम्प्रेषित करता है। जैसा डा. भगवत शरण उपाध्याय ने कवि कालिदास के संबंध में कहा था : 'शब्द, शब्द है, भाषा नहीं। भाषा, भाषा है, साहित्य नहीं। शब्द से भाषा और भाषा से साहित्य बनाने के लिए वह कुछ चाहिए होता है जो महान साहित्यकार के पास होता है।' यही बात Genius साहित्यकार को साधारण व्यक्तियों से अलग करती है।

हम उस संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं जो चीन, मिस्र, ग्रीक और सुमेरियन संस्कृति के समान हजारों वर्ष पुरानी है। आज ग्रीस, इजिप्ट और इराक में पुरानी सभ्यता और संस्कृति में वह नैरंतर्य नहीं है, जो हमारी संस्कृति में है। चीन तो अपनी प्राचीन संस्कृति को नकार रहा है। हमें गर्व होना चाहिए कि भारत ही संसार में एकमात्र देश है जो इतने बाहरी प्रभावों के होते हुए भी अपनी संस्कृति के नैरंतर्य को बनाये रख सका है। संसार का प्रथम साहित्यिक ग्रंथ ऋग्वेद यहीं रचा गया। ऋग्वेद धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथ तो है ही, पर उत्कृष्ट कोटि का साहित्यिक ग्रंथ भी है। इसी प्रकार उपनिषदों में महान विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है। 'भगवद्गीता' में साहित्यिक प्रयोग के बारे में तो कहना ही क्या। उधर अन्य भाषाओं में भी साहित्य पुष्पित पल्लवित हुआ। तमिल में भी इलेंगों आडिगल ने लगभग २००० वर्ष पूर्व 'शिलाप्पदीकरम' की रचना की। इसी के आसपास कुलावानिगम ने 'मनीमेखलई' और तिरु वल्लूर ने 'तिरु कुरूल' की रचना की। ईस्वी ८०० में केरल के महान दार्शनिक शंकर ने 'वेदांत सूत्र' की रचना की। कन्नड़ में बासावन्ना ने ११६८ ईस्वी में 'वचना' की रचना की। भक्ति काल में भी पूर्व में बंगाल, पश्चिम में महाराष्ट्र, उत्तर में राजस्थान, अवध, ब्रज भूमि, दक्षिण में तमिल तथा तेलुगू भाषी क्षेत्रों में समान रूप से यह धारा प्रवाहित हुई। राजस्थान में मीरा और तमिल भाषी अंदाल की अभिव्यक्ति एक ही है। बंगाल के राम प्रसाद, उत्तर भारत के तुलसी, सूर और कबीर तथा महाराष्ट्र के तुकाराम ने एक ही अलख जगाई।

महाकवि दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में उत्तर और दक्षिण में एक ही भावना के संचार के अनेक उदाहरण दिये हैं। उन्होंने लिखा है– 'अपस्तम्ब के समान नवीन धर्म सूत्र के रचयिता सत्याषाढ़ हिरण्यकेशी मलाबार के थे। वेदों को पुनः जीवित करने वाले महान पंडित सायणाचार्य दक्षिण में हुए थे। पुराणों में सर्वाधिक लोकप्रिय 'भागवत पुराण' की रचना दक्षिण में हुई थी। रामायण पर विवेक तिलक लिखने वाले उदालि भी दक्षिणात्य थे। कहां तक गिनाया जाये, वेदों के बाद से हिन्दू धर्म और संस्कृति पर जो असंख्य ग्रंथ लिखे गये, उनके लेखकों में से दक्षिणात्य पंडितों के नाम भी असंख्य हैं। उत्तर का चिन्तन, आज के ही समान, पहले भी तुरन्त दक्षिण पहुंच जाता था और इसी प्रकार दक्षिण में उत्पन्न विचारों और चिन्तनों से उत्तर के विद्वान प्रेरित हो उठते थे।' साहित्य ने हमेशा जोड़ने का काम किया है। अमीर खुसरो ने १३वीं शताब्दी में सर्वाधिक प्रचलित खड़ी बोली के स्वरूप की भाषा में लिखना शुरू किया। निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु पर उन्होंने लिखाः

गोरी सोवत सेज पर, मुख पर डाले केस,
चल खुसरो घर आपनो, रैन भई सब देस।

वे भारत के महापुरुषों में हैं। स्वामी दादूदयाल ने एकता पर ही बल दियाः

दोनों भाई हाथ–पग दोनों भाई कान, दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मुसलमान।

और कबीर का यह वक्तव्य समझने लायक हैः

हिन्दु कहत हैं राम हमारा, मुसलमान रहमान।

आपस में दोऊ लड़े मरत हैं, भेद न कोई जान।

शायद आप को मालूम ही होगा कि मुगलों में अकबर और शाहजहां ने और औरंगजेब की पुत्री जैबुन्निसा ने भी अपने हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए दोहे लिखे थे। औरंगजेब ने जब शाहजहां को कैद कर दिया था तो शाहजहां ने लिखाः

सो सुत बैर बुझे मन में धरि हाथ दियो बंधसार में डारी।
शाहजहां विनवै हरि सो बलि राजिवनैन रजाय तिहारी।

अब्दुल रहीम 'खानखाना' को तो कहना ही क्या। अनेक लोग सोचते हैं कि वे संत-फकीर थे। ऐसा कुछ नहीं। वे बड़े शूर-वीर और योद्धा थे। उनके पिता बैरम खां अकबर के मामा थे और रहीम अकबर के विश्वासपात्र सिपहसालार। पर जो भक्तिपूर्ण साहित्य उन्होंने रचा है, वह दिखाता है कि कैसी समरसता हिन्दुओं और मुसलमानों में थी। १७वीं शताब्दी में 'ताज' एक प्रसिद्ध कवयित्री हुई। उन्होंने कृष्ण भक्ति में लिखा :

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी,
बदनामी भी सहौंगी मैं।
देव-पूजा ठानी मैं निमाज हूं भुलानी, तजे कलमा-कुरान,
सारे गुनन गहौंगी मैं।

वे जीवन भर अत्यंत धर्मनिष्ठ मुसलमान रहीं, और भक्ति भी की। इसीलिए किसी कवि ने लिखा 'इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिए।' १८वीं शताब्दी में मीर तकी 'मीर' हुए। वे पूरे हिन्दुस्तानी थे। तभी तो उन्होंने लिखाः

उसके फरोगे हुस्न से झमके है सबमें नूर
शम्मे हरम हो या दिया सोमनाथ का।

उसी के प्रकाश से सबका सौंदर्य प्रकाशमान होता है, वह काबे का दिया हो या सोमनाथ का।ऐसे असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। हमारा सारा साहित्य ही एकता और बंधुत्व की भावना से आप्लावित रहा है। सच्चे साहित्यकारों ने घृणा पैदा करने वाला साहित्य लिखा ही नहीं। जिन्होंने लिखा है वे साहित्यकारों में गिने ही नहीं जाते। आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में उत्तर प्रदेश का अति महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निराला, पंत, प्रसाद, महादेवी, प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, रामकुमार वर्मा, कमलेश्वर सब यहीं के हैं। मैंने कुछ ही नाम गिने। नाम तो अनेक हैं। हिन्दी साहित्य का संवर्धन करने का महान उत्तरदायित्व आपका है।

मैं यहां यह भी कहना चाहूंगा कि हिन्दी और स्थानीय भाषाओं की उन्नति से ही वास्तविक साहित्य की उन्नति हो सकती है। विदेशी भाषा के बल पर साहित्य रचना नहीं हो सकती। जैसा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा है 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।'

'यह कवि अपराजेय निराला'

हिन्दी साहित्य के सबसे प्रखर, तेजस्वी और देदीप्यमान नक्षत्र युगप्रवर्तक और विद्रोही कवि और सचेत कलाकार सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला थे। यद्यपि उनका जन्म बंगाल के मेदनीपुर जिले की महिषादल स्टेट में हुआ था पर उनके पुरखों का गांव तो यहीं था। यहीं जीवन के अनेक वर्ष उन्होंने सुख में, दुःख में व्यतीत किये। उनमें गुण तो अवध के इस बैसवाड़ा क्षेत्र के थे। निराला जी की सर्वाधिक प्रसिद्ध जीवनी के लेखक डा. रामविलास शर्मा ने बैसवाड़ा और यहां की जनता का जो वर्णन किया है वह उद्धृत करने लायक है क्योंकि इससे निराला जी के व्यक्तितव पर प्रकाश पड़ता है। वे लिखते हैं: 'बैसवाड़े की जनता अपनी बोली, अपनी लोक संस्कृति, अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं पर बड़ा अभिमान करती है। यहां के लोग अपने जीवट और हेकड़ी के लिए विख्यात हैं। भारतेन्दु ने अपनी बैसवाड़ा की यात्रा के बाद लिखा था कि यहां का हर आदमी अपने को भीम और अर्जुन समझता है। ब्रजभाषा का गुण मिठास है, बैसवाड़ा का पौरुष।' इसी बैसवाड़े से निराला जी को मिला था ओज, पौरुष, तेजस्विता, स्वाभिमान और जीवट। इसी कवि के बारे में डा. रामविलास शर्मा की कविता है:

यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला,
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है,
शिथिल त्वचा दल दल है छाती,
लेकिन अभी संभाले थाती,
और उठाये विजय पताका,
यह कवि है अपनी जनता का।

इस धरती का प्रताप है कि निराला अपने समकालीन छायावादी कवियों पंत, प्रसाद और महादेवी की स्त्रियोचित कोमलता से मुक्त हैं और उनके काव्य में ओज, पौरुष और उदात्तता की प्रधानता दिखाई देती है।

उनके जन्म की तारीख और वर्ष के बारे में विवाद है। डा. रामविलास शर्मा ने उनकी जन्मतिथि २९ फरवरी, १८९९ बताई है। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार इनका जन्म जनवरी, १८९७ में हुआ। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इनका जन्म बसंत पंचमी, रविवार सन १८९६ को हुआ। बसंत पंचमी को अपने जन्मदिन समारोह में निराला जी उपस्थित रहा करते थे। हालांकि ऐसे मौकों पर वह इसे अपना जन्म दिन नहीं सरस्वती पूजा का दिन कहकर टाल देते थे।

मुक्त छन्द का प्रयोग प्रवाह के लिए किया गया है। परिमल की भूमिका में उन्होंने लिखाः 'मुक्त याद तो वह जो छन की भूमि में रहकर भी मुक्त है। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है।' ऐसा नहीं है कि उन्होंने छन्दबद्ध काव्य नहीं लिखा। उनका छन्दबद्ध काव्य उनके मुक्त छन्द से कम नहीं है। वे दोनों में पूरी तरह सफल हुए। 'जुही की कली' उनकी प्रारंभ की मुक्त छन्द की कविता थी जिसका भारतीय साहित्य में बहुत उच्च स्थान है। दूसरी ओर छन्दबद्ध 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' भी उनकी कविता के शिखर हैं।

संगीतात्मकता उनकी कविता की बहुत बड़ी विशेषता है। नाद सौन्दर्य के वे बड़े ज्ञाता थे। संगीत को वे काव्य के निकट लाये और काव्य को संगीत के निकट। उदाहरण के लिए सरस्वती वंदना को देखिए। इसके गायन से आज भी कितने कार्यक्रम प्रारंभ होते हैं:

वर दे, वीणावादिनी वर दे।
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव भारत में भर दे।
काट अन्ध उर के बंधन-स्तर बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे।

उन्होंने गद्य भी लिखा और खूब लिखा। उन्होंने उपन्यास, कहानियां और समालोचनात्मक लेख लिखे। अपनी कविताओं में उन्होंने प्रकृति की स्तुति की और अपने गद्य में यथार्थ का चित्रण किया। वे ग्रामवासियों के अभावों और अज्ञान से सुपरिचित थे। 'अलका' उपन्यास में तानाशाह जमींदार का उन्होंने चित्रण किया। वे ग्रामवासियों के अभावों और अज्ञान से सुपरिचित थे। अपनी सर्वश्रेष्ठ गद्य रचना 'बिल्लेसुर बकरिहा' में उन्होंने दिखाया कि कैसे किसानों में कुलक मनोवृत्ति जन्म लेती है। चतुरी चमार में उन्होंने जूते बनाने वाले चतुरी का सहानूभूतिपूर्वक वर्णन किया हैः चतुरी के जूते अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस से मस नहीं होते। चतुरी चतुर्वेदी आदियों से सन्त साहित्य का अधिक मर्मज्ञ है। वे पत्र और पुस्तकों के सम्पादक हैं, यह जूतों का। 'कुल्ली भाट' नाम के आत्मकथात्मक उपन्यास में कुल्ली भाट नाम के गरीब किसान की कहानी है। पंडित विश्वम्भर नाथ उपाध्याय ने इसकी तुलना गोर्की के उपन्यास 'मां' से की है। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे 'निराला'। गढ़ाकोला की यह मिट्टी जिससे वे गढ़े गए, धन्य है। आजकल कविता, उपन्यास, कहानी और निबंध के क्षेत्र में जो मरुकाल है वह जल्दी समाप्त हो। गढ़ाकोला में उन्नाव में, उत्तर प्रदेश में, भारत की कोई योग्य संतान फिर वैसी ही सृजनात्मक चेतना जगाने में समर्थ हो जैसी निराला जी ने जगाई। मेरी हार्दिक कामना है हिन्दी साहित्य की जो धारा आज अत्यंत क्षीण, क्लांत और निश्चल हो गई है, वह फिर प्रवाहमयी और वेगवान हो। फिर कोई निराला इसे नवगति, नव लय, ताल छंद नव दे, नव पर नव स्वर प्रदान करे।

पर निराला जैसे समर्थ कवि ही अपने तृप्त दुःख को सृजन के सांचे मे कविता में ढाल सकते थे।

जीवन भर विपन्न, गरीब रहे। अर्थाभाव कभी नहीं गया। पैसे कमाने के लिए किताबें लिखीं, पत्रिकाओं के लिए लेख लिखे। पर अन्त तक अभावों से जूझते रहे। पर किसी के आगे सर नहीं झुकाया। कभी समझौता नहीं किया। १९२१ मे उन्होंने कविता लिखी 'ध्वनि'। उसकी कुछ पंक्तियां हैं–

बहने दो,
रोक–टोक से कभी नहीं रुकती है
यौवन–मद की बाढ़ नदी की किसे देख झुकती है?
गरज–गरज वह क्या कहती है,
कहने दो।

उत्पीड़न और अत्याचार के आगे न झुकने वाली विद्रोही आत्मा का उन्होंने ऐसा सजीव चित्रण किया है। स्वयं फक्कड़, पर दानशीलता ऐसी कि यदि अपने पास कुछ हुआ तो किसी गरीब को दे दिया। कवि बच्चन सिंह ने लिखा कि एक बार जाड़े की रात में उन्होंने एक भिखारी को जाड़े से ठिठुरते देखा। उस भिखारी को अपना गद्दा और रजाई दे आये और खुद ठिठुरते रहे। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने एक संस्मरण में उल्लेख किया है कि एक बार बड़ा प्रयास कर प्रकाशक से रायलटी प्राप्त की। पैसों की सख्त जरूरत थी। रास्ते में एक बुढ़िया भिखारिन मिल गयी। सब पैसे उसे दे दिये और कहा 'मां अब भीख न मांगना।' उत्तर प्रदेश सरकार ने २१०० रुपये का पुरस्कार दिया। सारी राशि अपने एक मित्र की विधवा को दे आये आर खुद फाके किए। निराला जी के जीवन पर गालिब का एक शेर कितना सही उतरा है–

कर्ज की पीते थे मय और समझते थे कि हां
रंग लाएगी हमारी फाका मस्ती का दिन।

वे स्वाभिमानी थे। किसी से दबते नहीं थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनके प्रिय कवि थे। पर उनकी आलोचना भी कर डालते थे। एक बार गांधी जी ने इंदौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की बैठक में कह दिया 'है कोई हिन्दी में रवीन्द्रनाथ जैसा।' निराला जी के स्वाभिमान को ठेस लगी। वे महात्मा जी जहां ठहरे थे वहां गये। उनको हिन्दी की कविताएं सुनाई और उनसे कबुलवा लिया कि हिन्दी में उच्च कोटि के कवि हैं।

निराला गहन जनवादी थे। मानवतावाद उनकी कविता का मूल तत्व था। राष्ट्रपति भवन में उनका चित्र लगाने के अवसर पर डा. राधा कृष्णन ने कहा, 'निराला अपने जीवन और कृतित्व में विद्रोही थे। मानवीय भावना से ओतप्रोत उनकी सारी कविता अतीत और भविष्य से वर्तमान का वार्तालाप है। मनुष्य के स्वच्छन्द विकास के मार्ग पर पड़ी हुई सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय संक्षेप में सभी बाधाओं को मिटा देने का वह प्रयत्न करते रहे।'

तुलसीदास उनके प्रियतम कवि थे। तुलसी ने लिखा हैः 'गिरा अनयन, नयन बिनु वाणी।' अर्थात वे कभी इतने अशक्त हो जाते हैं कि गिरा यानि बुद्धि हो तो वह देख नहीं सकते और जब देख सकते हैं तो देखे हुए को वाणी नहीं दे सकते। पर निराला कभी गिरा और वाणी से वंचित नहीं हुए। छायावादोत्तर काल में प्रगतिवादी कवियों पर निराला जी का सर्वाधिक प्रभाव था। सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध उनकी सशक्त आवाज का नमूना उनकी कविता कुकुरमुत्ता है। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता हैः

'अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू,
रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने
अशिष्ट,
डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट
बहुतों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रक्खा खिलाया
जाड़ा घाम,
देख मुझको, मैं बढ़ा,
डेढ़ बालिश्त और ऊंचे पर चढ़ाः
और अपने से उगा मैं
नहीं दाना, पर चुगा मैं।

कविता में भी उन्होंने परम्परा से विद्रोह किया। उन्होंने कहा 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति, छन्दों के शासन से मुक्त हो जाना है।' छन्द विधान में उनकी शुरू से ही रुचि थी। इस विषय पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी। वह चाहते थे कि उनकी कविता रसिकों के मन में वैसी ही बस जाए जैसे बृज भाषा की कविता पर हृदय में घर कर गई थी। दूसरी ओर परम्परागत छन्द को तोड़कर उसे उन्होंने नये ढंग से बनाया। छन्द के आन्तरिक स्वरूप को उन्होंने नई सज्जा दी। यह नया प्रयोग केवल नया दिखाई देने के लिए नहीं था। काव्य प्रवाह में गति लाने के लिए किया गया प्रयास था। उदाहरण के लिएः

कुछ समय अनन्तर, स्थित रहकर
स्वर्गीयाभा वह त्वरित प्रखर
अचपल ध्वनि की चमकी चपला
बल की महिमा, बोली अबला,
जागी जल कर कमला, अमला मति डोली।

उनके पिता रामसहायक महिषादल राज्य में सिपाही थे। अपने बेटे का नाम उन्होंने रखा सुर्ज कुमार तिवारी। निराला जी जैसे सौंदर्यबोध वाले कवि ने इसे बनाया सूर्यकान्त त्रिपाठी। जब वे 'मतवाला' पत्रिका में लिखने लगे तो उसी तर्ज पर अपना उपनाम रखा निराला।

वे वास्तव में निराले थे। उन्होंने अपनी कविता में अपने जीवन में और सामाजिक मूल्यों में किसी परंपरागत आदर्श या मान्यता के बंधन को स्वीकार नहीं किया। महिषादल में उन्होंने अपना शैशवा बिताया और कलकत्ता में अपनी युवावस्था के प्रारंभ में रहे। उन्होंने शाला में कम पढ़ा और स्वाध्याय अधिक किया। पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी ने उनके एक संस्मरण में उल्लेख किया है कि 'जिस तरह स्वच्छन्दता और विस्तार का प्यासा पंछी पिंजड़े में देर तक बन्द नहीं रह सकता, उसी तरह उन्मुक्त, स्वतंत्र प्रकृति के धनी निराला स्कूल के दम घोंटने वाले परिवेश को ज्यादा सहन नहीं कर सकते।' तुलसीदास उनके सबसे अधिक प्रिय कवि थे। तुलसीदास के भजनः

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम।
कन्दर्प अगणित अमित छवि नवनील नीरज सुन्दरम।

की शब्द रचना और संगीत से वे अभिभूत हो उठे थे। वे रामचरित मानस पढ़ते और मुग्ध हो जाते। रवीन्द्रनाथ् ठाकुर की कविताएं अब छपने लगी थीं। उन पर इनके संगीत पक्ष का, लय का प्रभाव पड़ा। पद्माकर भी उनके प्रिय कवि थे। चण्डीदास को भी उन्हें खूब पढ़ा। चण्डीदास के कुछ अंशों का तो उन्होंने बंजभाषा में महाराजा छतरपुर के कहने पर अनुवाद भी किया। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द ने उन्हें ओजपूर्ण संन्यासी भाव दिया।

जीवन में उन्होंने दुःख ही दुःख देखे। उन्नीस वर्ष की आयु में पिता नहीं रहे। युवावस्था में एक पुत्र और पुत्री को छोड़ पत्नी मनोहरा देवी की महामारी में मृत्यु हो गयी। इसी महामारी में भाई और भाभी चल बसे। बाद में पुत्री सरोज का निधन हुआ। उसी की याद में उन्होंने 'सरोज स्मृति' कविता की रचना की जो हिन्दी की अत्यंत करुण कविता है। पत्नी की मृत्यु के बाद उनके पास विवाह के अनेक प्रस्ताव आये। एक बार विवाह का मन बना लिया, तभी खेलती हुई बालिका सरोज आ गयी। जो जन्मपत्री उनके पास विवाह के लिए भेजी गयी थी उसे सरोज को दे दिया और कहा खेलो। बच्ची ने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। सरोज के जीवन का जो मार्मिक वर्णन उन्होंने किया है उसी से समझा जा सकता है कि उनके लिए यह कितनी ह्रदय विदारक घटना थी-

मुझ भाग्यहीन की तू संबल, युग वर्ष बाद जब हुई विकल।
दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूं आज जो नहीं कही।
और
धन्ये, मैं पिता निरर्थक था कुछ भी तेरे हित कर न सका।

सम्पूर्ण समाज का विकास ही राष्ट्र का समग्र विकास

जन–मानस के मस्तिष्क में प्रकृति एवं विकास से संबंधित प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है। क्योंकि आज विकास और पर्यावरण दो विपरीत अर्थ वाले शब्द बनकर रह गये हैं। प्रगति के नाम पर प्रकृति की अवहलेना नहीं की जा सकती। अतः दोनों में सामंजस्य आवश्यक है। प्रदूषण एक अन्तरराष्ट्रीय समस्या बन चुका है। इस सर्वव्यापी समस्या से जूझने के लिए सभी राष्ट्रों की भागीदारी आवश्यक है जिसमें अभियन्ताओं को प्रमुख भूमिका निभानी है।

इंजीनियर को कैसा होना चाहिए। इस संबंध में पूर्व राष्ट्रपति, स्व. वरहगिरी वेंकटगिरी का कथन मैं यहां उद्धृत करना चाहूंगा–

'इंजीनियरों को मात्र प्राविधिक व्यक्ति नहीं होना है, वरन उनहें मजदूरों और मालिकों के बीच अच्छे औद्योगिक संबंधों की स्थापना में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान करना है। इस अर्थ में वे न केवल 'मशीनों के अभियन्ता' हैं, वरन 'सामाजिक अभियन्ता' अर्थात सामाजिक अभियान के कर्णधार भी हैं। उनके लक्ष्यों का क्षेत्र अधिकाधिक व्यापक होना चाहिए। क्योंकि हमारे देश का चरम आदर्श एक ऐसा वर्ग विहीन समाज है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक निश्चित कार्य होगा और वह श्रम की मर्यादा को अनुभव करेगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपना कार्य भाग पूरा करना है और लोगों को अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह निभाना है।'

समाज को आपसे बड़ी अपेक्षाएं हैं। समाज निर्माण में युवा शक्ति की भूमिका सदैव अग्रणी रही है। इसलिए आज की युवा पीढ़ी का यह दायित्व बन जाता है कि वह अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखते हुये समाज को नयी दिशा दे।

संपूर्ण समाज का विकास ही राष्ट्र का समग्र विकास है। चिकित्सा का क्षेत्र हो अथवा विज्ञान एवं तकनीकी का क्षेत्र हो, सभी क्षेत्रों में युवाओं को अपनी समस्त योग्यता एवं ज्ञान का उपयोग राष्ट्रहित में करते रहना चाहिए।

यह सही है कि हमने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अगणित उपलब्धियां प्राप्त कर ली हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की दृष्टि से हम जीव व अणु के गूढ़तम रहस्यों को भी जान गये हैं। यहां तक कि एक माइक्रो चिप में अनेकों कंट्रोल फलनों का माइक्रो सेकेंड के अल्पकोटि समयान्तराल में परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। मात्र कुछ इंचों के आकार वाली मेमोरी चिप में कई सौ पंजिकाओं में एकत्र की जा सकने वाली सूचनाओं को वर्षों सुरक्षित रखा जा सकता है। इतनी सारी उपलब्धियों के बावजूद मानव–जीवन ही नहीं, वरन पृथ्वी पर स्थित समस्त प्राणी मात्र प्रकृति से सही सामंजस्य स्थापित करने में काफी पिछड़ गये हैं।

अनियंत्रित नगरीकरण, औद्योगिकरण तथा उपयुक्त देसी प्रौद्योगिकी के अभाव में आज हमारे समक्ष विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। पृथ्वी के अधिक गरम होने, ओजोन परत के तेजी से छिजने, जैव विविधता की क्षति एवं वनों के अंधाधुंध कटान से जो नाजुक स्थिति उत्पन्न हो गई है, उस पर यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो 'प्राणि–जगत' का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है।

भारत के राष्ट्रपति, डा. शंकर दयाल शर्मा ने प्रथम राष्ट्रीय संरक्षण सम्मेलन में इंदिरा गांधी संरक्षण मानीटरिंग केन्द्र राष्ट्र को समर्पित करते हुये कहा था कि– 'औद्योगिक युग ने एक ऐसी विकास प्रक्रिया को जन्म दिया जिससे हमारे पर्यावरण को भारी नुकसान पहुंचा। श्रम और प्राकृतिक साधनों को अनंत मान लिया गया और संसाधनों की लूट–खसोट से भारी क्षति पहुंची। ...जब तक पर्यावरण संबंधी चेतना हमारे विकास के चिन्तन का अंग नहीं बन जाती, विश्व इस समस्या के समाधान के लिए भटकता ही रहेगा और उसके संसाधन दिन–ब–दिन घटते ही चले जायेंगे।'

इसके बाद राष्ट्रपति जी ने विकास और पर्यावरण के प्रति लोगों में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता पर बल देते हुये कहा कि–

'हमें अपनी शिक्षा प्रणाली में इसे शामिल करना होगा, ताकि भावी पीढ़ियों में जागरूकता उत्पन्न हो सके।...उद्योगों को हमें प्रदूषण के प्रभावों के प्रति शिक्षित करना ही होगा। उन्हें भी इस दिशा में अपने संसाधनों से अपने इस सामाजिक दायित्व को पूरा करना होगा। शहरी नियोजनकर्ताओं को अपने प्रयासों में इसको शामिल करना होगा। गांवों में स्वच्छता, निर्धनता उन्मूलन और पर्यावरण संरक्षण के बीच के संबंधों पर बल देना ही होगा।'

आज के इस आधुनिक युग में सामान्य शिक्षा के साथ ही रोजगारपरक प्रौद्योगिक शिक्षा को बढ़ावा देने की बहुत ज्यादा जरूरत है, जिससे देश की गरीबी और बेरोजगारी दूर हो सके और भारत विकसित राष्ट्रों की श्रृंखला में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना सके।

अन्तरराष्ट्रीय परिदृश्य में राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था को मजबूत करने के लिए उद्योग को बढ़ावा देने के साथ ही भारत में विकसित स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास को गति देने तथा इसके उत्पादन प्रक्रिया में सदुपयोग के लिए एक नया कोष स्वीकृत किया गया है, जिसमें आयातित प्रौद्योगिकी पर रायल्टी अदायगी पर लगाया गया पांच प्रतिशत शुल्क भी शामिल है। फिर भी सरकार द्वारा किये गये निवेश के अलावा औद्योगिक घरानों को भी अनुसंधान और विकास में समानान्तर निवेश करना होगा। विज्ञान और तकनीकी विभाग के कार्यक्रमों के लिए योजना परिव्यय वर्ष १९९१–९२ में १४६ करोड़ रुपये से ५४ प्रतिशत बढ़ाकर वर्ष १९९४–९५ में २२५ करोड़ रुपये कर दिया गया है।

आज जरूरत इस बात की है कि प्रौद्योगिकी का विकास ग्रामीण और शहरी गरीब लोगों कमजोर वर्गों की महिलाओं, अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों के गरीबी का उन्मूलन, आय बढ़ाने, जीवन स्तर में सुधार तथा रोजगार सृजन में होना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रीय विज्ञान और तकनीकी उद्यमिता विकास बोर्ड के कार्यक्रमों द्वारा २३

हजार से ज्यादा रोजगारों का सृजन किया गया है। इस संबंध में हमें प्रख्यात वैज्ञानिक रमन के इस कथन को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए कि 'भारत की गरीबी का उत्तर विज्ञान, अधिक विज्ञान तथा और अधिक विज्ञान में है।'

आर्थिक उदारीकरण और लगातार पूंजीनिवेश ने देश के विकास में एक नया आयाम स्थापित किया है। यह निर्विवाद है कि इससे बाजार में औद्योगिक प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। इसलिए यह आपकी जिम्मेदारी है कि अब आप सभी नव तकनीकी स्नातक ऐसी तकनीकी का विकास करें, जो अधिक गुणवत्ता का माल कम समय एवं कम लागत में तैयार कर सके। यद्यपि यह कठिन चुनौती है, किन्तु इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि तकनीकी संस्थानों में दी जाने वाली शिक्षा का उद्योगों में प्रयुक्त अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी से तालमेल स्थापित किया जाए। मेरा यह सुझाव है कि आप उद्योगों में जाकर शिक्षण संस्थाओं से सदैव संपर्क बनाये रखें और इस द्विपक्षीय संवाद को प्रोत्साहन देकर सफल बनायें।

उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में स्रोतों से उपलब्ध कच्चे माल पर आधारित उद्योगों की स्थापना की अच्छी संभावनाएं हैं, जिनमें से प्रमुख कृषि उपज, खनिज, वन तथा पशुधन सम्पदा है। खनिज सम्पदा पर आधारित उद्योगों की संभावनाएं झांसी, ललितपुर तथा हमीरपुर जनपदों में गुलाबी ग्रेनाइट तथा गुलाबी लाल रंग के ग्रेनाइट पत्थर पर आधारित हैं। यह यहां अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है, जिसकी अन्तरराष्ट्रीय बाजार में मांग अच्छी है। बड़ी–बड़ी शिलाओं के रूप में खनन तथा अंतिम रूप देने की पुरानी पद्धति को बदलकर उच्च तकनीकी विधि द्वारा किया जाना चाहिए, जिससे प्रदूषण की रोकथाम एवं खनिज सम्पदा नष्ट होने से बचायी जा सके। इसी तरह सिलिका, पैराफैलाइट, डोलामाइट, बाक्साइड, राक फास्फेट आदि खनिजों पर आधारित औद्योगिक इकाइयों की स्थापना की संभावनाएं हैं, जिन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। फिर भी औद्योगिक विकास का दायित्व भावी अभियन्ताओं के कठोर परिश्रम पर निर्भर है।

भारत में दीक्षान्त समारोह का वैदिक काल से अपना एक विशेष महत्व रहा है। प्राचीन धर्मशास्त्रों से हमें ज्ञात है कि 'समावर्तन–संस्कार' ज्ञानोपलब्धि का संस्कार था और जब स्नातक, ज्ञान–सागर में स्नात होकर 'स्नातक' बन जाता था, तब वह गुरु गृह से समावर्तित स्वगृह की ओर अग्रसर होता था–

तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनांतरम

गुरुकुल्मत स्वगृहागमनम।।

समावर्तन के अवसर पर आचार्य स्नातकों को 'दीक्षा' प्रदान करता था। दीक्षा का यह अवसर किसी भी विद्यार्थी के जीवन में अतिशय महत्वपूर्ण होता था। आधुनिक परिवर्तित परिवेश में संस्कार का स्वरूप बदल गया है, तब भी स्नातक भिन्न वेश–भूषा में अपनी 'उपाधि' प्राप्त करता है। पहले वह स्नातक– धर्म के इस विशेष अवसर पर छाता, उष्णीश, माला, आभूषण धारण करता था और अपने गुरु को भेंट में यही प्रदान करता था। स्नातक धर्म के पश्चात गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते समय दोनों ही प्रकार की शक्तियों का संतुलन अपेक्षित

है, इसलिए समावर्तन के अवसर पर इन शक्तियों का स्मरण किया जाता है। लौकिक जीवन के कार्यकलाप के लिए इन दिव्यशक्तियों के साथ ही लोक–शक्तियों की दीक्षा इस अवसर पर स्नातक को दी जाती है।

दीक्षान्त समारोह के अवसर पर व्यक्ति और समाज के शुद्ध शोधन की क्रिया की जाती है। मनुष्य अपने 'प्रकृत' रूप में रहते हुए शुद्ध और सभ्य नहीं होता, इसलिए उसे योग्य बनाने के लिए उसको संस्कारित किया जाता है। मानव और मानव समाज को अच्छा और समर्थ बनाने वाले ज्ञान और कुशलता के लिए भारतीय संस्कृति के अनुरूप जीवन यापन नितांत आवश्यक है। इसी संस्कार रूपी संस्कृति की सहायता से ही मानव आदर्श मानव और समाज वस्तुतः आदर्श समाज बनता है। संस्कार से निर्मित संस्कृति के प्रयोग से मनुष्य 'सुसंस्कृत' अर्थात शुद्ध, उन्नत, योग्य, उपयोगी और अधिक समर्थ बन जाता है। बात जब संस्कृति की आयी है तो मैं इस अवसर पर आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहर लाल नेहरू के विचारों को उद्धृत करना आवश्यक समझता हूं। उन्होंने कहा था–

Culture, first of all, is not loud, it i quite, it is restrained, it is tolerant. You may judge the culture of a person by his silence by a gesture, by a phrase or, more especially, by his life generally... The Cultural Characteristics of a country are important and are certainly retained, unless, ofcourse, they do not fit in with the sprit of the age. So, by all means, adhere to the special culture of your nation. But there is something that is deeper than national culture and that is human culture.

पंडित जी ने मानव संस्कृति पर इस उद्देश्य से अधिक बल दिया था कि जब मानव सुसंस्कृत, सुसभ्य और आदर्शवान होगा, तभी देश की संस्कृति भी सदैव सशक्त और समृद्ध रहेगी। लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि समस्त देशवासी सुशिक्षित और प्रबुद्ध हों। विद्या सबसे बड़ा धन है। विद्या से मानव जीवन ज्योतिर्मय होता है और वह सदैव सुखमय जीवन व्यतीत करता रहता है। इस संबंध में भर्तृहरि ने सदियों पहले कहा थाः–

विद्या नाम नरस्य रूपमधिक प्रच्छन्नगुप्त धनं
विद्या भोगकारी यशः सुखकारी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते न तु धन विद्याविहीनः पशुः।।

अर्थात विद्या ही मनुष्य का सबसे श्रेष्ठ रूप है। छिपा हुआ सुरक्षित धन है। विद्या भोगविलास देने वाली है तथा यश एवं सुख देने वाली है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। परदेश में विद्या ही बन्धुजन है। विद्या सबसे उत्कृष्ट देवता है। राजाओं के मध्य में विद्या ही पूजी जाती है, धन नहीं। इसलिए विद्या से हीन मनुष्य पशु ही है।

शिक्षक का जहां तक संबंध है इसके बारे में स्वामी विवेकानन्द ने बहुत अच्छी बात कही थी, जो पहले की अपेक्षा आज अधिक प्रासंगिक है। उन्होंने कहा थाः-

Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there undigested at your life. We must have life building, man making, character making assimilation of ideas.

देश एवं समाज का सर्वांगीण विकास शिक्षा पर ही आधारित है। हम विश्व पर एक दृष्टि डालें तो फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, ब्रिटेन, रूस और चीन आदि सभी विकसित राष्टों में लगभग शत-प्रतिशत निवासी शिक्षित हैं, जबकि तीसरी दुनिया में शिक्षा आज भी एक चुनौती बनी हुई है।

भारत में साक्षरता का जहां तक संबंध है, यह वर्ष १९५१ में मात्र १८.३३ प्रतिशत थी, जो वर्ष १९९१ में बढ़कर ५२.१९ प्रतिशत हो गयी, किन्तु राष्ट्रीय साक्षरता की तुलना में उत्तर प्रदेश में साक्षरता का प्रतिशत ४१.६ ही है। इसलिए शिक्षा के विस्तार के साथ ही इनके स्तर में गुणात्मक सुधार की सबसे बड़ी जरूरत है।

शिक्षा का वातावरण सदैव सुदृढ़ बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि आचार्यगण एवं छात्र-वर्ग शिक्षा के आदर्श उद्देश्यों की पूर्ति में कोई कसर उठा न रखें और अध्यापन एवं अध्ययन का क्रम पूरी निष्ठा से जारी रखा जाए, ताकि हमारे ज्ञान के मंदिरों से बड़ी संख्या में छात्र एवं छात्राएं शिक्षा ग्रहण कर प्रतिभावान और आदर्शवान बनकर देश का गौरव बढ़ा सकें।

स्नातक, व्रत एवं कर्म से जुड़ी उत्तर प्रदेश की ज्ञान भूमि के क्षेत्र को ही नहीं अपितु आधुनिक, प्रगतिशील, वैज्ञानिक जगत को भी आलोकित करने वाली है। प्रदेश की पौराणिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि हमारे आप के जीवन-दर्शन को रचनात्मक ऊर्जा प्रदान करने वाली है।

इस धरती में श्रीराम की मर्यादा, चरित्र, लोक संग्रह की कल्याणकारी, विग्रहवान आदर्श, महावीर स्वामी की अहिंसा, बुद्ध की करुणा, गोरखनाथ का समभाव अनुप्राणित है तो आप के इस अक्खरू को संत कबीर ने 'तीनहु लोक ते न्यारी तथा काशी' से भी श्रेष्ठ माना। तुलसी ने हमारे पाश्र्व में ही यह कहा था-

जाकी सहज सांस श्रुति चारी, सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।

महात्मा गांधी की सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह ब्रह्मचर्य के स्वातल्य पीठिका की प्रासंगिकता आज भी विद्यालयों के अनुशासन के लिए आवश्यक है। स्नातक होना शिक्षार्थी की जागृतावस्था का परिचायक है। निराला का 'स्मरण करो बार-बार जागो फिर एक बार।'

जागृत विवेक ही इन बंधनों से मुक्ति दिलाता है। आज विश्व में ज्ञान की आराधना की प्रतियोगिता है जिसके लिए निराला ने कहा कि–

'आराधन का उत्तर दृढ़ आराधन' हमें और हमारे विश्वविद्यालयी छात्रों को दृढ़तर आराधना से विश्व को उत्तर देना है। हिन्दी और हिन्दुस्तान के बेमिसाल फक्कड़ संत कबीर की साफगोई का आप को स्मरण दिलाना चाहता हूं– वे कह गये हैं–

'कबिरा खड़ा बाजार में, सबकी मनावे खैर।

ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।'

कबीर की यह निष्पक्षता धर्मनिरपेक्षता, स्पष्टता इस क्षेत्र के लिए ही नहीं, वरन विश्व के लिए आदर्श मानदंड है।

मैं स्वामी विवेकानन्द के इस कथन को उद्धृत करना चाहूंगा–

May every body be happy, May every body be free from diseases, May every one of us see to it that, No body suffers from any pain or sorrow.

●

शहर इंसानों के लिए

आज सभी विकासशील देशों में नगरीकरण अत्यन्त तेजी से हो रहा है। इस कारण हो रहे परितर्वनों पर यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो नगरीय जीवन में अनेक विकृतियां आ सकती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ४६ वर्षों में देश के नगरों की जनसंख्या लगभग २० से २५ करोड़ बढ़ी है। जहां १९४७ में नगरों में कुल जनसंख्या का २० प्रतिशत हिस्सा रहता था, वहीं अब ३० प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती है। नगरों की जनसंख्या बढ़ने का कारण आर्थिक है। ग्रामों की जनसंख्या भी इस दौरान बढ़ी है। यह संभव नहीं है कि बढ़ती हुई जनसंख्या को कृषि पर ही आधारित रखा जा सके। इस कारण ग्रामों से नगरों की ओर नौकरी की खोज में जनसंख्या का पलायन हुआ है। इसे Push of the villages and pull of the towns कहा गया है।

जिस गति से नगरों का विकास हो रहा है उसके हम और आप सभी साक्षी हैं। जहां १९४७ में दिल्ली की जनसंख्या ५ लाख के आसपास थी, वहीं आज यह एक करोड़ के लगभग पहुंच गयी है। जहां लखनऊ की जनसंख्या १९५१ में लगभग ४.९७ लाख थी, आज यह जनसंख्या बढ़कर लगभग १६.४३ लाख के आसपास पहुंची गयी है। पिछले दशक में नगरों के विकास की दर ३.८५ प्रतिशत रही है। देश के सभी प्रान्तों में नगरों का विकास तेजी से हुआ है। हमारा प्रदेश देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाला प्रदेश है और यहां नगरों व ग्राम के बीच अनेक स्थानों पर सीमा ही समाप्त हो गई है, जिसे Urban या Rural-Urban continuum कहा गया गया है। मुझे अनेक बार लखनऊ से कानपुर सड़क मार्ग से जाने का अवसर मिला है और अक्सर ऐसा प्रतीत होता है कि लखनऊ, उन्नाव और कानपुर मिलकर कुछ ही समय में एक विशाल नगर के रूप में हो जायेंगे। हैदराबाद के पास सिकन्दराबाद नगर को इस उद्देश्य से बसाया गया था कि हैदराबाद की जनसंख्या कम हो और लोग सिकन्दराबाद जाकर बसें। पर देखते ही देखते यह दोनों महानगर पूरी तरह से मिल गये हैं।

जिस तेजी से नगरीकरण हो रहा है उस तेजी से आवासी एवं अन्य सुविधाओं का विकास नहीं हो पा रहा है। इसका नतीजा यह है कि नगरों में होने वाले निर्माण अनियोजित और अवैज्ञानिक ढंग से हो रहे हें। मलिन बस्तियों और झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या बढ़ रही है। फुटपाथ और सार्वजनिक उपयोग के स्थानों पर बेतहाशा अतिक्रमण हो रहे हैं। इससे सड़कों, नालियों और सफाई की व्यवस्था पर भी बहुत दबाव पड़ा है जिसके कारण इनका विकास अनेक क्षेत्रों में या तो हुआ ही नहीं है या गलत तरीके से हुआ है। अनियोजित और अधपके सोच पर आधारित नगरीकरण के सामाजिक एवं पर्यावरण से संबंधित दुष्परिणाम सामने आये हैं। सभी समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि मलिन बस्तियों और झुग्गी झापेड़ियों में नागरिक सुविधाओं के अभाव में रहने वाले व्यक्ति

तनाव के शिकार होते हैं और इस तनाव की परिणति हिंसा में होती है। शहरों में बढ़ने वाली हिंसा के पीछे बस्ती का रहने योग्य न होना बहुत बड़ा कारण है। दूसरी ओर मकानों के निर्माण में बिना कोई नवीनता लाये पुरानी लीक पर मकान बनाने से आसपास के पर्यावरण को भी भारी क्षति हो रही है। उदाहरण के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध भवन निर्माण सामग्री का उपयोग न करते हुए ईंटों के मकान बनाने से शहरों के पास की जगहें न तो आवास योग्य रह जाती है और न कृषि योग्य। इस प्रकार हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का भी दुरुपयोग कर रहे हैं। अनेक मकानों में इस प्रकार निर्माण हो रहे हैं जिससे नगरों के प्राकृतिक जल निकास के मार्ग बंद हो जाते हैं। निर्माण के पास इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता और जल निकास की वैकल्पित व्यवस्था नहीं की जाती। इसके परिणाम स्वरूप ही दिल्ली, बम्बई, जबलपुर जैसे नगरों में जरा सी बरसात होने पर बड़े क्षेत्रों में बाढ़ की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अनेक नगरों में मलिन बस्तियों को विकसित करने और कमजोर आय वर्ग के व्यक्तियों के लिए आवास निर्माण का काम बड़े पैमाने पर हुआ है। पर इसमें कुछ उदाहरणों को छोड़कर जो कल्पनाहीन प्रदर्शित की गई है वह आश्चर्यजनक है। इन बस्तियों में अधिकतर अरुचिकर और नीरस होने के साथ ही वैज्ञानिक हैं। एक झुग्गी में रहने वाले व्यक्ति को रहने के लिए अधिक स्थान उपलब्ध होता है और वह अपनी सुविधा के अनुसार उसमें रहता है। पर उसे ईंट का बना हुआ एक कमरे का आवास उपलब्ध करा देने से उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है। इसी का नतीजा है कि अनेक शहरों में इस योजना के अन्तर्गत बनाये गये आवास खाली पड़े हैं और उन्हें कोई लेने वाला नहीं है। इसका कारण यह है कि वस्तुविदों और इंजीनियरों ने लोगों की आवश्यकताओं का अध्ययन नहीं किया है। कहीं-कहीं सामाजिक चेतना रखने वाले वस्तुविदों ने अच्छे प्रयोग किये हैं। उदाहरण के लिए मुझे याद है कि इन्दौर नगर में वास्तुविद श्री दोशी ने झुग्गी-झोपड़ी निवासियों को बसाने के लिए जिस नवीन बस्ती की परिकल्पना की है वह आदर्श है। इसमें प्राचीन परम्परा के अनुसार भारत की जलवायु और लोगों की सामाजिक आदतों को ध्यान में रखकर बस्ती का विकास किया गया है। हमारे प्रदेश में पर्वतीय क्षेत्र में जिस तरह बेतरतीब और बिना सूझ-बूझ के निर्माण हो रहे हैं, वह चिन्ताजनक हैं। बहुमंजिले, सीमेंट, कंक्रीट के बिना ढलान वाली छतों के भद्दे निर्माण वहां के वातावरण के बिल्कुल ही अनुरूप नहीं है। इससे पहाड़ों का सौन्दर्य ही नष्ट हो गया है। मसूरी, नैनीताल, अल्मोड़ा आदि नगरों की जलवायु पर इसका प्रभाव पड़ा है। बड़े-बड़े मकान बिना सोचे समझे बनाने के कारण इन्हें पिछले वर्ष बाढ़ से हानि उठानी पड़ी। अनेक स्थानों पर सीमेन्ट कंक्रीट के मकान बन जाने से कई ग्रामों के जल स्रोत नष्ट हो गये हैं। भवनों के निर्माण में डाइनामाईट से विस्फोट करने के कारण अनेक गांव भू-स्खलन के शिकार हुए हैं। भीमताल, नौकुचिया ताल जैसे सुन्दर स्थान बदसूरत भवनों के कारण नष्ट हो रहे हैं। अतः यह जरूरी है कि पहाड़ों के लिए भवन निर्माण के नये प्रतिमान बनाये जायें और व्यावसायिक शोषण से इसे मुक्त किया जाये।

आज के युग में ऊर्जा की बचत एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसलिए भवन निर्माण करते समय इस बात की ओर ध्यान देना जरूरी है कि भवन ऐसे बनें जिनमें ऊर्जा की खतप कम से कम हो। इस दृष्ट से यह आवश्यक है कि भवनों की ऊंचाई कितनी हो, इस पर ऊर्जा की बचत के पहलू को देखते हुए विचार किया जाए। बहुमंजिले भवन होने से लोगों को चढ़ने के लिए लिफ्ट और पानी ऊपर चढ़ाने के लिए पम्प आदि के प्रयोग से काफी ऊर्जा नष्ट होती है। पश्चिमी देशों में विशेषकर स्वीडन, नार्वे, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका, जहां पर्यावरण के संबंध में चेतना है, ऊर्जा की बचत पर काफी ध्यान दिया जा रहा है। मैं समझता हूं कि हमारे देश के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मुद्दा है। इसके अतिरिक्त भवनों का निर्माण अधिक से अधिक ऐसा करना चाहिए ताकि वहां गर्मियों में अधिक धूप से बचाव हो सके और भवन बहुत गरम न हों। इससे कूलर और एअर कंडीशनर जैसे उपकरणों का उपयोग कम होगा और ऊर्जा की खपत में कमी होगी। इस संबंध में मैं श्री लौरी बेकर द्वारा बनाये गये Mud houses का उल्लेख करना चाहूंगा। इससे एक ओर स्थानीय भवन निर्माण सामग्री का इस्तेमाल हुआ और दूसरी ओर इन मकानों में बहुत अधिक गर्मी और बहुत अधिक सर्दी से भी बचत हुई। इस प्रकार लौकरी बेकर के इस अत्यन्त सफल प्रयोग से पर्यावरण की सुरक्षा के साथ ऊर्जा की बचत भी होती है। देखा जाए तो हमारी भवन निर्माण उपविधियां अधिकतर पाश्चात्य सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें प्रत्येक परिवार एक पृथक और एकाकी यूनिट बन गया है। पहले जमाने में मकान जुड़े हुए बनते थे जो एक बाड़े में खुलते थे। इस सिद्धान्त के अनेक लाभ हैं। एक तो इससे सामाजिक व्यत्रस्था में अलगाव की भावना कम होती है और दूसरे सामाजिक क्रिया-कलापों के लिए लोगों को स्थान भी मिलता है। अभी सैटबैक के सिद्धान्त से भवनों के चारों ओर खुला स्थान होने के कारण आवास की सभी दीवारें धूप से प्रभावित होती है। इससे आवास असुविधाजनक रूप से गरम हो जाते हैं। इसी प्रकार मकानों की ऊंचाई भी बहुत कम बनने लगे हैं। एक तो भारत के मौसम के हिसाब से ऐसे निवास वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। दूसरे बचपन से ही लोगों को घुटन भरे वातावरण में रहना पड़ता है। इसके अलावा भवन निर्माण उपविधियों को एक समान और एक रूप कर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप सभी नगरों का एक ही तरह से नीरस विकास हो रहा है। सौन्दर्यबोध के लिए इसमें कोई स्थान नहीं रहा। पुराने समय में हर नगर का अपना चरित्र था और अपनी पहचान थी। आज लखनऊ, अहमदाबाद, भोपाल या किसी और नगर में भेद करना संभव नहीं रह गया है। जबकि पहले हर नगर अपनी वास्तुकला और रहन-सहन की खासियत के कारण जाना जाता था। जैसा मैंने पहले जिक्र किया है वास्तुविदों को स्थानीय रूप से उपलब्ध भवन निर्माण सामग्री उपयोग की ओर ध्यान देना चाहिये। इसके अलावा बहुत सी ऐसी सामग्री को जिसका अभी कोई उपयोग नहीं होता भवन निर्माण में लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए ताप विद्युत घरों से निकलने वाले फ्लाईऐश का उपयोग मजबूत ईंटे बनाने के लिये किया जा सकता है और किया गया है। विडम्बना है कि ताप विद्युत घरों में फ्लाइऐश के ढेर लगे हुए हैं और इसे हटाना उनके सामने बहुत बड़ी समस्या है, दूसरी ओर मिट्टी खोदकर ईंटें बनाने से उपयोगी भूमि नष्ट की जा रही है। इसी प्रकार पहले उन क्षेत्रों में

जहां पत्थर होते हैं आर.सी.सी. के बजाए पत्थर के मकान बनाये जाते थे। जहां बहुत अधिक वर्षा होती है वहां मंगलोर टाइल्स का इस्तेमाल किया जाता था। अब दुर्भाग्य से देखने में आ रहा है कि सीमेंट कंक्रीट की बनी छतों के ऊपर सीमेंट की नकली टाइल्स बना कर प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयोग किया जा रहा है। ग्वालियर क्षेत्र में कारीगरों द्वारा पहले बने बनाये लिंटल्स का प्रयोग किया जाता था पर अब उनके सामन को कोई भी खरीदने वाला नहीं होने के कारण इनकी भी रोजी–रोटी समाप्त हो गई है।

आज नगरों में सबसे बड़ी आवश्यकता झुग्गी–झोपड़ी क्षेत्र में रहने वालों के जीवन में सुधार की है। यह जरूरी नहीं है कि इन लोगों के लिए पक्की ईंटों के एक–एक कमरों के मकान ही बनाये जाये। इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि झुग्गी–झोपड़ी वासियों के लिए अवस्थापना में सुधार किया जाए और इन बस्तियों में सड़क, ड्रेन, बिजली, पानी और सुलभ शौचालयों की व्यवस्था कर दी जाए। यदि वहां के निवासियों की हैसियत है तो वह अपनी सुविधा के अनुसार आवास बना लें। अन्यथा मेरी समझ में ईंटों के एक कमरे के मकान से झुग्गी–झोपड़ी हर दशा में अधिक सुविधाजनक और बेहतर निर्माण है। सबसे बड़ी जरूरत अच्छे infrastructure की है।

भवन निर्माण संबंधी प्रावधानों में अक्सर सर्विस सेक्टर के लिए प्रत्येक कालोनी में भूमि सुरक्षित रखने की शर्त होती है। पर देखा गया है कि अक्सर ही इस भूमि पर भी समिति के सदस्यों को मकान बनाने की अनुमति दे दी जाती है और सर्विस सेक्टर के लोगों के रहने की जगह नहीं होती है। कालोनी के निवासियों को नाई, धोबी या अन्य सेवा के कार्यों की आवश्यकता होती ही है, पर इसके लिए सुरक्षित स्थान अन्य कार्यों के लिए घेर लिये जाने से वे इन सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं या इन कालोनियों के आसपास ऐसे सेवा कर्मी झुग्गी–झोपड़ी बनाकर रहने लगते हैं। दूसरी ओर झुग्गी–झोपड़ी बस्तियों को हटाने पर उन्हें शहर से दूर बसा दिया जाता है। इस प्रकार वे अपने कार्यस्थल से बहुत दूर हो जाते हैं और कालोनी के निवासियों को भी उनकी सेवायें प्राप्त नहीं होती है। मैं समझता हूं कि झुग्गी–झोपड़ी हटाकर खाली हुए स्थान का व्यावसायिक निर्माण किया जाना गरीबों के हित के विरुद्ध है। नगर नियोजकों और वास्तुविदों का काम यह नहीं है कि भूमि विकास केवल व्यावसायिक दृष्टि से करें। अंततः नगर नियोजकों का लक्ष्य नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकता पूरी करने का होना चाहिये। मुझे विश्वास है कि भविष्य में नगर विकास के कार्य करते समय इन मुद्दों पर ध्यान दिया जायेगा।

भारत में अनेक प्रसिद्ध और विचारवान वास्तुविद हुए हैं जिन्होंने वास्तुकला को और Urban Design को नये आयाम दिये हैं। मेट्रिक गोडिज जिन्होंने 'सिटीज आफ इंडिया' पुस्तक भी लिखी है, ने मध्य प्रदेश में इन्दौर और जगदलपुर जैसे नगरों की परिकल्पना की थी। आदिवासी बाहुल्य इलाके में बसा हुआ जगदलपुर आज भी नगर नियोजकों को नियोजन के बारे में काफी कुछ सिखा सकता है। इसी प्रकार आज लुटियन्स की दिल्ली की देखें लुटियन्स ने भारत की जमीन पर उगने वाले शीशम और जामुन के पेड़

सड़कों के दोनों ओर लगाये थे। इनके लिए गरमी की भरी दुपहरी में भी दिल्ली की सड़कों पर चलते हुये हम लुटियन्स को याद करते हैं। इसी प्रकार दिल्ली में स्टाईन द्वारा परिकल्पित इंडिया इन्टरनेशनल सेन्टर के भवन, जो लोदी गार्डेन में बना है, में वास्तुकला की आदर्शतम परिकल्पना की गयी है। उसके बनने से लोदी गार्डेन की भव्यता किसी भी प्रकार कम नहीं हुई है और भवन को खूब खुलापन मिला है। वास्तुविद दोशी का मैंने पहले जिक्र किया था। इन्दौर के अलावा इन्होंने मध्य प्रदेश के जलबलपुर नगर में मध्य प्रदेश राज्य विद्युत परिषद का जो भवन निर्मित किया है, वह भी उन सब खूबियों से भरा हुआ है जो एक आदर्श भवन में होनी चाहिए। उन्होंने उपलब्ध स्थान का अधिक से अधिक उपयोग किया है, भवन ऊर्जा की बचत करने वाला है, उसमें खुलापन है, उसमें हवा आने के लिए पूरी व्यवस्था है और कहीं भी प्राकृतिक प्रकाश नहीं रुकता।

मैं समझता हूं कि नगरों का संबंध जीते जागते इंसानों से होना चाहिए। जब तक शहर में रहने वाले इंसानों को सभी नागरिक सुविधाएं नहीं उपलब्ध होंगी और वे खुलेपन में जीवन नहीं बिता सकेंगे, तब तक ऐसे शहर को मैं अच्छा शहर नहीं समझ सकता। भारत में ही सिन्धु घाटी की सभ्यता में मोहनजोदड़ों जैसे नगर का विकास हुआ है जो आज भी अपने खुलेपन और अद्‌भुत जल निकास प्रणाली, सामूहिक स्नानागारों आदि के लिए जाना जाता है। प्रसिद्ध पुरातत्वविद जान मार्शल ने लिखा है कि मिस्र में, मैसोपोटामिया में या रोम में बड़े भव्य भवन, मंदिर और महल तो बने पर सामान्यजनों के रहने की इतनी अच्छी सुविधा का कोई नगर नहीं बना। मुझे जर्मनी के विख्यात साहित्यकार ब्रेश्त की कविता की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं जिनका अत्यंत सुन्दर हिन्दी अनुवाद मंगलेश डबराल ने किया है। मैं इस अनुवाद को उद्‌धृत करना चाहूंगा।

'मैंने सुना था कि शहर बरसाने जा रहे हैं
मैं नहीं गया उन्हें देखने,
क्या फायदा ऐसे शहरों को बसाने से,
जिनका ताल्लुक इतिहास और सांख्यिकी से ही हो,
बनिस्बत जीते जागते इंसानों से।'

मुझे विश्वास है कि विद्वान वास्तुविद इस संबंध में विचार करेंगे कि कैसे नगरों को हर आदमी के रहने लायक बनाया जा सकता है और कैसे नगर नियोजन के नियमों, विशेषकर भवन निर्माण उपविधियों को नगरों को संवारने और उन्हें रहने लायक बनाने के लिये उपयोग किया जा सकता है।

●

वन हैं जीवन और प्रगति के आधार

वि श्व के विशालतम देशों में भारतवर्ष का सातवां स्थान हे, जिसका विस्तार क्षेत्र ३,२८७.३ हजार वर्ग किलो मीटर है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई के साथ–साथ इसके विविध ऊंचे–नीचे स्वरूप के कारण इसे विविध प्रकार की जलवायु एवं पेड़–पौधों व प्राणियों के अनेक रूप पाये जाते हैं। उत्तरी ध्रुव से लेकर नम उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र के मध्य सभी प्रकार के ज्ञात जलवायु–गत दशायें पायी जाती हैं और यही इस भूमि की विलक्षणता है। जलवायु और मिट्टी की इस विविधता ने देश के अनेक प्रकार के बवन प्रदान किये हैं।

भारत के भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग १० वां भाग अत्यन्त शुष्क है, जो राजस्थान में ६९ प्रतिशत, पंजाब में ५ प्रतिशत, हरियाणा में ४ प्रतिशत तथा गुजरात में २२ प्रतिशत में फैला हुआ है। यद्यपि शुष्क क्षेत्र उत्पादकता की दृष्टिकोण से अभी भी बहुत पीछे हैं, परन्तु सिंचाई के समुचित साधनों के कारण इन क्षेत्रों में कृषि पैदावार पिछले दशक में काफी बढ़ी है, जिसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों में विश्व के अन्य शुष्क क्षेत्रों की तुलना में जनसंख्या भी बढ़ी है, जो लगभग ५० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। विश्व में अन्य शुल्क क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व २ से लेकर ५ व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर ही है।

आजादी के तुरन्त बाद से ही हमारे देश के नीति निर्माताओं ने वनों के महत्व को समझा। यह हमारे देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की दूरदर्शिता का ही परिणाम था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के मात्र ५ वर्ष बाद ही हमारी नई वन नीति की घोषणा की गई, जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि देश के भौगोलिक क्षेत्र एक तिहाई भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए। हमारी भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रयासों के परिणामस्वरूप वर्ष १९७७ में भारत के संविधान के मार्गदर्शक सिद्धान्तों में संशोधन कर यह जोड़ा गया कि 'राज्य पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने का प्रयास करेगा तथा देश के वनों और वन्य प्राणियों की रक्षा करेगा।' भारत सरकार द्वारा १९८० में संशोधित २० वें सूत्र के रूप में रखा गया। इसके फलस्वरूप राज्य सरकारों द्वारा वनीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जाने लगी। भारत सरकार द्वारा बंजर भूमि को विकास के लिए १९८५ में राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड का गठन किया गया तथा वन संसाधनों के आधार को सुदृढ़ करने और वन सम्पदा में वृद्धि के प्रयासों की सफलता के लिए वानिकी अनुसंधान शुरू किया गया। इन प्रयासों को मूर्त रूप देने के लिए दिसम्बर, १९८६ में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद की स्थापना की गई। इस परिषद के तत्वावधान में ही शुष्क वन अनुसंधान का कार्य प्रारंभ किया गया और इस कार्य के लिए जोधपुर में इस संसथान की स्थापना की गई। यह प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार एवं राज्य सरकारों के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में हमारे वनों का ह्रास रुका है तथा अब वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि होना भी प्रारंभ हो गया है।

पिछले वर्षों में बढ़ती हुई जनसंख्या को बसाने के लिए, खेती के लिए, इमारती लकड़ी के लिये, पशुओं के चारे के लिए तथा ईंधन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई हुई, जिसके कारण देश के पर्यावरण पर अत्यधिक कुप्रभाव पड़ा। यदि वनों का उपयोग केवल हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही किया जाता तो संभवतः उनका विनाश इस सीमा तक नहीं होता और पर्यावरण के संतुलन की जो समस्या हमारे सामने आज खड़ी हो गई है, वह नहीं होती। यह हमारी बढ़ती हुई आवश्यकताओं या यदि कहा जाए तो लालच का ही प्रतिफल है कि हमने अपने वनों का विनाश इस सीमा तक कर डाला। महात्मा गांधी ने कहा था कि–

Nature has everything for man's need but not enough for his greed.

गांधी जी के ये शब्द आज कितने प्रासंगिक लगते हैं। वस्तुतः यदि हमने अपनी लालच पर नियंत्रण किया होता और अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखा होता तो आज हम वायुमंडलीय विनाश के इस कगार पर खड़े नहीं होते। हमने जीवन को सहारा देने वाले तंत्र को ही नष्ट करना प्रारंभ कर दिया।

पुरातत्व–वेत्ता तथा वैज्ञानिक यह मानते हैं कि हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ों की सभ्यतायें वनों के विनाश के कारण नष्ट हो गई। भूमि का क्षरण हुआ, नदियां सूख गई, रेगिस्तान बढ़ता गया तथा भूमि में अम्ल एवं क्षार बढ़ने के कारण उसकी उत्पादकता समाप्त हो गई। राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में वृद्धि का भी संभवतः यही कारण है।

पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश भागों में औसतन प्रतिवर्ष १०० से ४५० मिली लीटर मानसून की वर्षा होती है, जो मुख्यतः माई जुलाई से सितम्बर तक प्राप्त होती है। ग्रीष्मकाल में अधिकतम तापमान लगभग ५० डिग्री सेल्सियत तक पहुंचता है, जबकि शीतकाल में न्यूनतम तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस तक गिर जाता है। इस प्रकार तापमान के अत्यधिक अन्तर, बलुई मिट्टी तथा न्यूनतम जलग्रहण शक्ति के कारण अधिकांश क्षेत्र वनस्पति आवरण विहीन है।

इंदिरा गांधी नहर के बन जाने से राजस्थान के उत्तर–पश्चिम तथा पश्चिमी भाग में सिंचाई की सुविधा १४.७ लाख हेक्टेयर में हो गई है। इसका अनुकूल प्रभाव कृषि उत्पादन एवं वृक्षारोपण पर पड़ा है। इस क्षेत्र में खिजरी वृक्ष प्रजाति को किसान उसकी उपयोगिता को देखते हुये लगाता है।

भारत सरकार द्वारा इन शुष्क क्षेत्रों में सूखे की समस्या तथा शुष्क बलुई क्षेत्र के विस्तार को रोकने के लिए दो कार्यक्रम चलाये गये––

१. सूखा प्रभावित क्षेत्रीय कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.)

२. मरुस्थल विकास कार्यक्रम (डी.पी.पी.)

उपर्युक्त दोनों विकास कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य इन क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों का समैकित रूप में विकास एवं उपयोग करना है। इसके साथ ही समाज के गरीब लोगों के जीवनोद्धार भी इन कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य रहा है। अभी तक इन दोनों योजनाओं के अन्तर्गत ५४ लाख हेक्टेयर क्षेत्र में जलागम प्रबंध के दृष्टिकोण से समैकित विकास हुआ है, परन्तु अभी भी लगभग १८४ मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में यह कार्य किया जाना शेष है।

उपर्युक्त दोनों योजनाओं को शुष्क जलागम इकाई के आधार पर सतत विकास एवं उत्पादन कर आम आदमी की भागीदारी से, विभिन्न विभागों के आपसी तालमेल से क्षेत्र का सर्वोन्मुखी विकास करते हुए परिस्थितिकीय संतुलन को सुधारना है। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश में उपलब्ध मूलभूत सुविधाओं, नवीनतम तकनीकों तथा विभिन्न प्रतिष्ठानों द्वारा किये गये अनुसंधानों का सही ढंग से सदुपयोग किया जाए, जिससे न केवल क्षेत्र में उत्पादकता बढ़े, बल्कि पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन में भी निरन्तर वृद्धि हो।

कृषि एवं उद्यान के क्षेत्र में भारत को अत्यधिक उपलब्धि मिली है। आंशिक रूप से शुष्क क्षेत्रों में भी इस दिशा में आशातीत सफलता मिली है। इन क्षेत्रों में फल प्रजातियों में अंगूर, नीबू, बेर, अनार तथा अमरूद आदि के उत्पादन से स्थानीय लोगों को आर्थिक लाभ मिल रहा है।

विश्व के अधिकांश शुष्क एवं आंशिक रूप से शुष्क क्षेत्रों में मानव तथा पशुओं के दबाव के कारण धीरे-धीरे वनस्पति आवरण में कमी आ रही है, जिसके फलस्वरूप ऐसे क्षेत्रों का विस्तार हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि वनस्पति आवरण बढ़ाकर ऐसे क्षेत्रों को हरा-भरा किया जाये, इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाई जाए तभी इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की खुशहाली में वृद्धि होगी।

जनसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का युग

आज का युग वस्तुतः जनसंचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। संसार में सबसे पहले वर्ष १८७६ में जब डा. अलेक्जेंडर ग्राहम वेल ने तार एवं टेलीफोन का आविष्कार किया था तो दुनिया स्तब्ध रह गयी थी। आज जनसंचार ने इतनी ज्यादा प्रगति कर ली है कि टेलीफोन जो उस समय भारी भरकम और देखने में काफी भद्दा लगता था अब आधुनिकतम टेलीफोन की तकनीक इतनी आकर्षक, उन्नत एवं सूक्ष्म हो गई है कि अब लोग पेजर, सेल्युलर मोबाइल, वायसमेल और इलेक्ट्रानिक मेल संचार सेवा के रूप में भरपूर लाभ उठा रहे हैं। यदि इस द्रुत संचार माध्यम के बारे में यह कहा जाए तो इसमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी कि आज देश एवं काल के साथ ही सारी दुनिया पेजर जैसे सूक्ष्म उपकरण में सिमट कर रह गई है, जिसे जेब में रखकर अपने निवास अथवा कार्यालय से दूर रहने के बावजूद लोग इस यंत्र के माध्यम से बराबर जुड़े रहते हैं। इससे उनका संपर्क विच्छेद किसी क्षण नहीं होने पाता।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कम्प्यूटर के आविष्कार ने तो सूचना तंत्र की दुनिया ही बदल दी है। आज आप नजर उठाकर देखें तो मानव–जीवन का कोई भी क्षेत्र अब कम्प्यूटर के विस्तार से वंचित नहीं रह गया है। कम्प्यूटर के आविष्कार से आज राजनैतिक, समाजिक, शैक्षिक और आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में क्रांतिकारी बदलाव आये हैं, जिसने प्रगति का पथ ही स्वतः प्रशस्त कर दिया है।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में आज द्रुतगति से जो परिवर्तन हो रहे हैं, उससे आप सभी परिचित ही हैं। संचार माध्यम का जहां तक संबंध है ये हमेशा मानव जीवन का एक अंग रहा है। इन माध्यमों से मानव और मानव के बीच की दूरी अब बिल्कुल समाप्त हो गई और वह अब इन माध्यमों से इतना करीब आ चुके हैं कि यदि वे चाहें तो मिनटों में ही नहीं, बल्कि सेकेंडों में संपर्क स्थापित कर सकते हैं। लेकिन जहां तक सूचना तंत्र का संबंध है यह पूर्णतया संचार तंत्र पर ही आधारित है, जिसके बारे में २२ फरवरी, १९८८ को भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, स्व. राजीव गांधी ने नई दिल्ली में आयोजित एशिया एंड पैसिफिक टेली–कम्युनिकेशन कांफ्रेन्स को संबोधित करते हुये कहा था कि–

Effective communication performs two important tasks. It bring people together. It is vital for optimising the management of administrative institutions and growth and development programmes. For optimum management, we need rapid collection, collation and transmission of information.

केवल इतना ही नहीं बल्कि राजीव की सूचना एवं संचार माध्यमों को राष्ट्रीय नीति निर्धारण एवं विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए भी नितांत आवश्यक समझते थे। इसीलिए उन्होंने यह भी कहा था कि–

Efficient telecommunications are a powerful tool in nation-building. They are a tool in fostering the spread of new ideas, in dramatically altering the concepts of time and distance. They are vital to the transformation of traditional societies into modern societies. They are indispensable for involving and getting the people to participate in national policies and programmes. And it is for this reason that we have given such high priority to telecom in our development programmes.

सच तो यह है कि २० वीं सदी में पहुंचते–पहुंचते संचार एवं सूचना माध्यमों ने अपना एक अलग ही अस्तित्व बना लिया है, जिससे संबंध विच्छेद कर पाना अब लगभग असंभव हो गया है।

सूचना एवं प्रचारतंत्र में कम्प्यूटर आज एक अभिन्न अंग बन गया है। द्रुत सूचना सम्प्रेषण तथा सूचना प्राप्ति में कम्प्यूटर आज के इस आधुनिक युग की ऐसी अनुपम देन है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। कम्प्यूटर ने आज हमारे समाज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला है।

आज के इस आधुनिक युग में सामाजिक, शैक्षिक, व्यापारिक, कृषि और विज्ञान के क्षेत्र में, विशेषकर अनुसंधान एवं शोध कार्यों में सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग से 'कार्य संस्कृति' में सर्वोत्कृष्ट सुधार आया है और कार्य निष्पादन में भी तीव्रता आई है। भारत में औद्योगिक नीति के उदारीकरण के फलस्वरूप औद्योगिक प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होना स्वाभाविक है। आज विश्व बाजार में प्रवेश कर कदम जमाये रखने के लिए आवश्यक है कि अपने उत्पादन में वृद्धि के साथ ही उत्पादकता को बढ़ाने तथा गुणवत्ता को बनाये रखने पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाए। इस संबंध में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। भारत के वर्तमान संसाधनों का बेहतर एवं अपेक्षित उपयोग सुनिश्चित करने में सूचना प्रौद्योगिकी के औचित्य के नकार दिया गया तो यह निश्चित जान लीजिये कि हम विकसित राष्ट्रों की श्रृंखला में आने का जो सपना देख रहे हैं और इसके लिए अनवरत संघर्ष भी हैं, साकार होने में पीढ़ियां गुजर जायेंगी। हमें विकसित राष्ट्रों की श्रृंखला में आने के लिए यह बहतु जरूरी है कि हम आधुनिकतम प्रचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग को सर्वोच्च प्राथमिकता दें और प्रशासनिक एवं पुलिस आदि सहित मानव समाज के सभी क्षेत्रों में ऐसी चेतना जागृत करें कि जिससे वे सूचना देने और प्राप्त करने,

नीति निर्धारण, योजनाओं के क्रियान्वयन तथा कार्य निष्पादन के सिलसिले में इस प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की ओर ज्यादा से ज्यादा प्रेरित हो सकें।

संसार में सूचना प्रौद्योगिकी वस्तुतः एक ऐसा सशक्त क्रियाशील एवं संवेदनशील माध्यम है, जिससे दुनिया के किसी भी क्षेत्र में हो रहे विकास एवं घटनाक्रम की जानकारी उपग्रह संचार के जरिये क्षण भर में प्राप्त की जा सकती है। केवल इतना ही नहीं, आज चिकित्सा के क्षेत्र में भी ऐसी अद्‌भुत क्रांति आई है कि अब चिकित्सा विशेषज्ञ दुनिया के किसी भी कोने में बैठे हुए किसी अन्य विशेषज्ञ से उपग्रह संचार माध्यम से आपरेशन के दौरान विचार–विमर्श कर सकते हैं और रोग का निदान द्रुतगति से कर सकते हैं। आज यह बात प्रायः आपके और हमारे देखने में आ ही चुकी है कि अब पत्रकार दूर बैठकर भी किसी से प्रेस कांफ्रेंस के दौरान प्रश्न कर सकते हैं।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कंप्यूटर का आविष्कार मानव–जाति को एक अदुभुत देन है। कंप्यूटर की शुरुआत यद्यपि १७वीं शताब्दी में हुई, किन्तु इसका सबसे ज्यादा विकास २० वीं शताब्दी में हुआ और इसका जबरदस्त उपयोग भी शुरू किया गया मानव शक्ति और कार्य क्षमता की दृष्टि से जो काम असंभव और कठिन था, वह अब कम्प्यूटर की मदद से बहुत आसान और सुविधाजनक हो गया है। सच तो यह है कि कंप्यूटर के आविष्कार से मानव की शक्ति, संसाधन, समय और धन की भी अपेक्षाकृत अधिक बचत होने लगी है। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक है कि लोगों को खासतौर से छात्र वर्ग को कंप्यूटर के बारे में हार्डवेयर और साफ्टवेयर का प्रशिक्षण भी सुचारू रूप से दिया जाए तथा उससे संबंधित उपकरणों के संचालन की पूरी जानकारी दी जाए। तभी मैं समझता हूं कि 'वर्ष २००० में सूचना प्रौद्योगिकी' का जो हमारा सपना है, निश्चय ही साकार हो सकेगा।

●

इन्दिरा गांधी : अप्रतिम व्यक्तित्व

स्वर्गीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा जी का पूरा जीवन चुनौतियों का सामना करते बीता। बचपन में वानर सेना बनाने वाली इंदिरा का साहस १९४७ में देखा गया जब वह दंगाग्रस्त क्षेत्रों में घूम–घूम कर सहायता कार्य करती रहीं। साम्प्रदायिकता के प्रति गहरी नफरत उन्हें उसी समय हो गयी थी क्योंकि उन दंगों में जो हैवानियत दिखाई दी उससे मानवता का सिर लज्जा से झुक गया था।

इंदिरा जी के २४ जनवरी, १९६६ को प्रधानमंत्री बनने के बाद तो जैसे चुनौतियों का सिलसिला ही शुरू हो गया। वह वर्ष भारत के सबसे बड़े अकाल का वर्ष था। बताते हैं कि १८९९ के बाद वैसा सूखा पहली बार पड़ा था। फिर भी इंदिरा जी की सूझ–बूझ से १९४३ के बंगाल के अकाल का हादसा नहीं दोहराया गया। अकाल से लोगों के मरने की नौबत नहीं आयी। दो–तीन वर्ष के भीतर ही उन्हें दक्षिणपंथी तथा यथास्थितिवादी शक्तियों का सामना करना पड़ा। लेकिन अपनी प्रगतिशील नीतियों को लागू करने में उन्हें कोई झिझक नहीं हुई। उन्होंने प्रिवीपर्स समाप्त करके तथा बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके अपनी आर्थिक नीति का स्पष्ट संकेत उसी समय दिया। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से उद्योग धंधों के लिए पूजी प्राप्त करना आसान हो गया और देश विकास पथ पर तेजी से बढ़ा। सन १९७१ में जब पड़ोसी देश को सबक सिखाया, बल्कि विश्व के शक्ति–संतुलन को भी भारत के पक्ष में मोड़ा। बड़े–बड़े देश भी उस समय हमारे पड़ोसी देश को भारत के विरुद्ध मदद देने में घबराने लगे थे।

इंदिरा जी में सही समय पर सही निर्णय लेने की अद्भुत क्षमता थी। उनका विचार था कि हमारी आर्थिक नीति और विकास नीति ऐसी होनी चाहिए कि देश से विषमता मिटे और देश समाजवादी व्यवस्था की ओर आगे बढ़े। अपनी राजनीतिक व्यस्तता के बावजूद वह जनता से सीधा संवाद कायम करने का प्रयास करती रहती थीं। गरीबों, दलितों तथा आदिवासियों के बारे में उनके मन में बड़ी चिन्ता रहती थी। अमरकंटक में उन्होंने आदिवासियों को अपना परम आत्मीय बताया था। मुझे याद आता है, उनका वह मर्मस्पर्शी भाषण जो उन्होंने मध्य प्रदेश के भीक गांव की जनसभा में दिया था। उन्होंने कहा कि 'समाज में अभी भी बहुत अन्याय हो रहा है, बहुत सी गलतफहमियां फैली हुई हैं, अंधविश्वास हैं और कुछ लोग समझते हैं कि ऊंच नीच की पुरानी सामाजिक परम्परा चलती रहेगी तो शायद उनको और दूसरों को लाभ हो। असलियत यह है कि इससे किसी को भी लाभ नहीं होता है। गरीबों को भी नहीं। जब देश का जीवन स्तर ऊंचा होगा, तभी मध्य वर्ग और निर्धन तबके के लोगों को आगे बढ़ने के ज्यादा मौके मिलेंगे।'

इंदिरा जी के पास दूर दृष्टि थी। बीसवीं सदी में विश्व विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में बहुत आगे जा चुका होगा। इसलिए भारत कहीं पीछे न रह जाये। यह उनकी चिन्ता का

विषय था। सन १९७४ में पोखरन में शांतिपूर्ण आणविक परीक्षण उनके प्रयासों से हुये। सन १९८३ में रोहिणी और इनसेट एक अंतरिक्ष में छोड़ा गया, मद्रास के परमाणु बिजलीघर में काम शुरू हुआ और हमारा तीसरा अभियान दल अंटार्कटिका पहुंचा। वह चाहती थीं कि विज्ञान व आधुनिक तकनीकों को विकास कार्यों से जोड़ा जाये, ताकि आम जनता को उनका लाभ मिले। उन्होंने बीस सूत्री कार्यक्रम की परिकल्पना करके विकास को एक नयी दिशा दी।

राष्ट्रीय एकता और सहिष्णुता को इंदिरा जी बहुत महत्वपूर्ण मानती थीं। सहिष्णुता को भारतीय संस्कृति और लोकतंत्र का मूल तत्व बताते हुये उन्होंने न्यूयार्क में २ अगस्त १९८२ को कहा– 'हमारा स्वतंत्रता आंदोलन अपने राष्ट्र की पुनः खोज के साथ–साथ एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण का भी आंदोलन था। हमने प्रजातांत्रिक प्रणाली को पसन्द किया जिसका अर्थ है देश के भीतर सहिष्णुता। इसी प्रकार हमने गुटनिरपेक्षता को अंगीकार किया जिसका अर्थ है– अन्तरराष्ट्रीय सहिष्णुता। राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक में २१ जनवरी १९८४ को उन्होंने इसी बात को आगे बढ़ाते हुये कहा 'भारत की सहनशीलता विभिन्न संस्कृति और धार्मिक परम्पराओं तथा विभिन्न जीवन पद्धतियों की देन है। उनकी मान्यता थी कि बाहरी देशों में भारत का जो सम्मान है, उसका कारण उसकी सहिष्णुता की परम्परा है। किन्तु प्रतियोगी राजनीति के फलस्वरूप असहिष्णुता की शिकार हो गयी है। हमारे धार्मिक उत्सव जो सभी व्यक्तियों और साम्प्रदायों द्वारा मनाये जाते थे, अब देश के कई क्षेत्रों में तनाव और चिन्ता का कारण बन गये हैं।'

इंदिरा जी ने अनेक बार कहा था कि साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, जातीयता हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं। जिन खतरों की वे चर्चा किया करती थीं उन्होंने देश का बड़ा अहित किया है।

इंदिरा जी पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए जीवन पर्यन्त प्रयासरत रहीं और उन्होंने मात्र देश की एकता के लिए ही नहीं, बल्कि विश्व एकता और पारस्परिक बन्धुता पर बल दिया। वह सदैव यह चाहती थीं कि पूरा विश्व एक परिवार हो। इंदिरा जी पूरी मानवता को एक मानती थीं और समस्त विश्व को एक परिवार की ही संज्ञा देती रहती थीं। इस संबंध में उन्होंने एक बार कहा था कि–

Our world is small but it has room for all of us to live together in peace and beauty, and to improve the quality of the lives of men and women of all races and creeds.

विश्व एकता, विश्व शांति और विश्व कल्याण के लिए समर्पित इंदिरा जी ने मानव को मानव से जोड़ने का जो अभूतपूर्व कार्य किया है, वह कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। पूर्व प्रधानमंत्री, स्वर्गीय राजीव गांधी ने १९ नवम्बर १९८७ को नई दिल्ली में संसद के केन्द्रीय कक्ष में प्रोफेसर स्वेतोस्लाव रोएरिच द्वारा बनाये गये इंदिरा जी के चित्र के अनावरण समारोह में इंदिरा जी के बहुमुखी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुये कहा था कि–

'वे भारतीय क्रांति की संतान हैं। उन्हें भारतीय क्रांति पर पूर्ण विश्वास था। उन्हें भारत की आध्यात्मिक विरासत और सांस्कृतिक विविधता पर पूर्ण विश्वास था। उनका विचार था कि राजनीति गरीब लोगों की सेवा है। इंदिरा गांधी को मालूम था कि अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां भारत और हाल ही में विकसित अन्य देशों पर दबाव डालती हैं तथा प्रधानमंत्री के रूप में यह सुनिश्चित किया कि भारत हर प्रकार के दबाव से निपट सके। उनके नेतृत्व में हमने खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त की। हमने गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किए तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में हमने नई उपलबधियां हासिल कीं।'

श्रीमती इंदिरा गांधी बचपन से ही बड़ी कर्मठ रहीं। उन्होंने राष्ट्रहित और जनहित में जब भी कोई निर्णय लिया तो उस पर वे अडिग रहीं और अपने सिद्धान्तों से कभी कोई समझौता नहीं किया। वे बचपन में फ्रांस की 'जोन आफ आर्क' से बहुत ज्यादा प्रभावित थीं। फ्रांस को आत्मोत्सर्ग करने वाली इस बलिदानी महिला ने अपने देश की स्वतंत्रता के लिए हंसते-हंसते आग में जलते हुए प्राण त्याग दिये थे। इसी प्रकार श्रीमती इंदिरा गांधी ने भी ३० अक्टूबर १९८४ को कहा था कि 'यदि मुझे राष्ट्र सेवा में प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो मैं दूंगी। लेकिन याद रहे कि मेरे शरीर से बही रक्त की हर बूंद देश और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता को मजबूत करेगी।'

इंदिरा जी की यह आकांक्षा और भविष्यवाणी शत-प्रतिशत सही साबित हुई। उन्होंने अपनी मातृ भूमि की स्वतंत्रता, एकता और अखंडता के लिए अपने प्राणों की आहूति दे दी। उनका यह दृढ़ संकल्प भी हम सबको यह संकल्प लेकर साकार करना है कि हम एक थे, एक हैं और हमेशा एक रहेंगे।

धर्म निरपेक्षता और समाज

भारत शताब्दियों से ऋषियों, मुनियों और सूफी–सन्तों का देश रहा है। हमारे देश में इन सभी महापुरुषों ने सदैव भारतवासियों को पारस्परिक प्रेम–सद्भाव, सद्व्यवहार, भाईचारा और मेल मिलाप की शिक्षा दी है। इसके अलावा उन्होंने धर्म, जाति, समुदाय और उंच्च–नीच की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर जीवन यापन करने और एक–दूसरे के साथ उपकार करने एवं उनके सुख–दुख में साथ देने का उपदेश दिया है।

मेरा मानना है कि एकता और साम्प्रदायिक सौहार्द जहां बना रहेगा, विकास की किरणें वहां उतनी ही अधिक प्रखर रूप से फूटेंगी। बिना शान्ति सद्भाव के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसलिए हम सबका समन्वित प्रयास होना चाहिए कि शान्ति और सद्भावना की यह थाती हर हाल में सुरक्षित रहे। भारत एक देश है, जहां अनेक धर्म हैं और सभी धर्मो के अलग–अलग अपने रीति रिवाज हैं। हमारे देश के सभी महापुरुषों ने हमेशा सर्वधर्म समभाव, सद्व्यवहार, बन्धुत्व और पारस्परिक प्रेम की शिक्षा दी है। हम इस पर अमल करें यही हमारा पुनीत कर्तव्य है। राष्ट्रीय एकता के लिए हमारा यही बहुमूल्य योगदान होगा।

साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता या जातीय विद्वेष से देश, समाज और राष्ट्र कमजोर होता है। जब यह भावना उत्पन्न होगी कि यहां कोई हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई या किसी वर्ग विशेष का नहीं है, बल्कि सब आपस में भाई–भाई हैं तो पारस्परिक प्रेम बढ़ेगा, जिसके फलस्वरूप समस्त देशवासियों को यह महसूस होगा कि हम सब एक ही माला के पिरोये हुए मोती हैं।

मैं धर्म निरपक्षेता की बात करते हुए एक बार फिर देश की महान नेता स्वर्गीया श्रीमती इंदिरा गांधी के उस कथन को देहराना चाहता हूं, जिसमें उन्होंने कहा था कि–

'धर्म निरपेक्षता हमारे समाज के प्रमुख सिद्धान्तों में से है। यह धर्म में हमारी आस्था का कम होना नहीं, बल्कि सभी धर्मों के प्रति हमारी समान आदर की भावना को दर्शाता है। भारत जैसे बहुधर्मी समाज के लिए यह नितान्त जरूरी है। धर्म निरपेक्षता राष्ट्रीय एकता एवं सद्भाव का मूल आधार है।'

अब हमें अपनी राष्ट्रीय एकता को और अधिक सुदृढ़ बनाने की दिशा में गंभीरता से सोचना होगा और ठोस कदम उठाने होंगे। साम्प्रदायिक, भाषा, जाति, रंग के आधार पर उपजने वाले भेदभाव को जड़ से मिटाना होगा और अपने देश को और अधिक समृद्धिशाली तथा सशक्त बनाना होगा।

मैं एक बात और जोर देकर कहना चाहूंगा कि भाषा राष्ट्र की अस्मिता का प्रतीक होती है और भाषा का इस्तेमाल राष्ट्रीय एकता के लिए किया जाना चाहिए।

वर्तमान समय देश के सामने कई चुनौतियां लेकर खड़ा है। हमें इन चुनौतियों का साहस एवं एकता से मुकाबला करना है। अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है। हमें इस पर गर्व है। पर इस एकता को भंग करने के लिए आज कुछ शक्तियां तुली हुई हैं। धर्म एवं भाषा के मतभेद को आधार बनाकर देश को तोड़ने का षडयंत्र रचा जा रहा है, जिससे हमारे देश की राष्ट्रीय एकता कमजोर हो सकती है।

मैं एक बार फिर आपसे कहूंगा कि स्वयं को संकीर्ण जातिवाद से न जोड़कर एक समाज में रहने के लिए एक दूसरे का पूरक समझें। भारत एक ऐसा देश है, जिसने कभी हिंसा का पक्ष नहीं लिया, बल्कि हमेशा सत्य–अहिंसा और बन्धुत्व के भाव को उजागर करके आजादी जैसी महान दौलत को हासिल किया है। कोई परिस्थिति आये मगर मैं यह कभी नहीं चाहूंगा कि 'सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' पर कोई आंच आये। क्योंकि कुछ विघटनकारी ताकतें हमें एक दूसरे से अलग करने में लगी हैं, जिसे इकबाल जैसे महान शायर ने महसूस किया और कहा कि–

'कुछ बात है जो हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरो जमा हमारा।
और आगे बढ़कर फिर कहना पड़ाः–
'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तां हमारा।'

●

वृहद वाद व्यय और विलंब न्याय व्यवस्था की पहचान

लखनऊ शहर केवल अपनी नफासत ओर तहजीब एवं अपनी परम्पराओं के लिए ही मशहूर नहीं है बल्कि कला, साहित्य, भाषा, संगीत और संस्कृति के लिए भी प्रख्यात है। अवध का यह नगर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में तमाम उथल–पुथल के बावजूद सामाजिक समरसता, साम्प्रदायिक सामंजस्य और मानवीय सद्‌भावनाओं के क्षेत्र में अपनी अद्वितीय छवि रखता है और अनेकता में एकता के कथन को अच्छी तरह से सिद्ध करता है। नवाब सआदत अली खां और नवाब वाजिद अली शाह जैसे अवध के नवाब न केवल भाषा, संगीत व साहित्य प्रेमी थे, बल्कि उनके संरक्षण में यहां शिल्पकला, चिकन, जरी, रेशम की कशीदाकारी का कार्य विशेष रूप से पनपा, जो आज भी जनसामान्य में और विशिष्ट लोगों में प्रख्यात है।

गोमती नदी के तट पर बसा यह ऐतिहासिक नगर, जो आगरा–अवध के संयुक्त प्रांतों की राजधानी भी था, और जो अवध न्यायालय की न्यायिक परम्पराओं के लिए मशहूर था, के बारे में कौन नहीं जानता। अन्तरराष्ट्रीय विधि शास्त्रियों के संगठन ने अपराध तथा न्याय से संबंधित विषयों पर देश–विदेश की न्यायिक प्रक्रिया से जुड़े और न्याय की भावना से ओत–प्रोत विधि के प्रकांड पंडितों के सम्मलेन का यहां आयोजन कर इस शहर के गौरव को और अधिक बढ़ाया है, जिसके लिए मैं उत्तर प्रदेश राज्य की तरफ से संगठन का आभारी हूं और इस शहर के नागरिकों की ओर से आप सभी को इस कार्य के लिए मुबारकबाद देता हूं। आज की परिस्थितियों में आपराधिक प्रवृत्तियां न कवल किसी समाज विशेष के लिए भयंकर समस्याएं बन गयी हैं, वरन राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर की आपराधिक समस्याएं सभी के लिए चिन्ताजनक विषय बन गई हैं। यूं तो अपराध और अपराधी किसी भी सभ्य समाज में असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न करते हैं और नागरिकें के लिए दैनिक जीवन में भय उत्पन्न करते हैं लेकिन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपराध देश की सार्वभौमिकता और अखंडता को चुनौती देते हैं। पिछले कुछ वर्षों में जिन आपराधिक प्रवृत्तियों ने जन्म लिया है उनसे हमारे देश को अत्यधिक आघात पहुंचा है। हमारे देश के अनेक महान नेताओं और राजनीतिज्ञों की हत्याओं के षडयंत्र तथा अपराध, ऐसे अपराध हैं, जिनके भयंकर परिणाम सभी को विदित हैं। वास्तव में तस्करी, मादक द्रव्यों का अवैध व्यापार, आतंकवाद, वायुयान अपहरण ऐसे अपराध हो जो अन्तरराष्ट्रीय कानून व्यवस्था के लिए समस्या बन गये हैं। दूसरी ओर असहाय महिलाओं पर किये जाने वाले अत्याचार बच्चों के शोषण से संबंधित अपराध मानवता के लिए कलंक बन गये हैं। ऐसे वातावरण में इस अन्तरराष्ट्रीय संगठन ने अपराध और न्याय विषय पर अध्ययन, विचार–विमर्श और वार्ता करने के लिए जो प्रयास

किये हैं वह अत्यधिक सराहनीय हैं। अपराध, अपराधी, अपराधें के नियंत्रण और आपराधिक न्याय व्यवस्था के बारे में हम सभी गंभीर रूप से सम्बद्ध हैं, अतः आपके संगठन द्वारा चुने गये विषय के लिए मैं आप सभी को मुबारकबाद देता हूं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके सराहनीय प्रयासों से अपराध, न्याय व्यवस्था में जो महत्वपूर्ण सुधार प्रस्तावित किये जाएंगे, उनसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपराधों के नियंत्रण और अपराधियों के दमन के लिए प्रभावी योजनाएं तैयार की जा सकेंगी।

अपराधिक विधि का प्रमुख उद्देश्य समाज में कानून तथा शांति–व्यवस्था बनाये रखना है। अपराध की परिभाषा समाज के क्रिद्ध कार्यों के रूप में बतायी गयी है। प्रसिद्ध विधि शास्त्री सामंड के अनुसार– कानून के दृष्टिकोण से अपराध एक ऐसा कार्य है जो समाज के लिए सामान्य रूप से हानिकारक है ळाले ही अपराध का शिकार केवल एक व्यक्ति ही क्यों न हो। दंड का उद्देश्य अपराधियों को दंडित करके समाज की सुरक्षा करना है। चूंकि अपराध ऐसे कार्य अथवा लोप हैं जो कानून से प्रतिबंधित हैं और चूंकि राज्य सरकार का दायित्व ऐसे कार्य को करने वालों को दंडित करना है अतः राज्य इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से नागरिकों की सुरक्षा करता है और परोक्ष रूप से सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा करता है।

अपराध अंतरराष्ट्रीय विधि के क्रिद्ध भी हो सकते हैं। अतः अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसे अपराधों को गंभीर रूप से लिया जाना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय अपराधिक विधि का जन्म बहुत पहले हो चुका है। आशा है कि अन्तरराष्ट्रीय अपराधिक विधि के अंतर्गत शीघ्र आपराधिक विधि संहिता बनायी जायेगी और अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय गठित किये जाएंगे। हर्ष का विषय है कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर साधारण सभा (जनरल असेम्बली) ने १९९३ में ४८/३१ में प्रस्ताव के द्वारा अंतरराष्ट्रीय विधि आयोग के अंतरराष्र्टीय आपराधिक न्यायालय की रचना करने हेतु अपनी संसतुति की थी और अन्तरराष्ट्रीय आपराधिक वि आयोग ने ४६वें सत्र में ६० अनुच्छेदों का ड्राफ्ट स्टेट्यूट अन्तरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय की संरचना के बारे में तैयार करके अपनी संस्तुति प्रेषित की है। अन्तरराष्ट्रीय विधि आयोग संस्तुति के अनुसार इन न्यायालयों का क्षेत्राधिकार गंभीर युद्ध अपराधों, मानवाधिकारों के व्यापक उल्लंघनों, मानव हत्या, रंगभेद, वायुयान अपहरण, मादक औषधि की तस्करी, आतंकवाद आदि से संबंधित अपराधों के बारे में होगा। लेकिन ऐसे न्यायालय के आदेशों का समादर संबंधित राष्ट्रों द्वारा करने परही यह क्षेत्राधिकार प्रभावी हो सकेगा। विधि आयोग की इन संस्तुतियों का अनुमोदन संयुक्त राष्ट्रों की साधारण सभा द्वारा किया जाना है। अभी हाल में ही सुरक्षा परिषद ने भी अंतरराष्र्टीय शांति–व्यवस्था एवं सुरक्षा को बनाये रखने के उद्देश्य से बोस्निया के मामले में प्रभावी कदम उठाये थे, लेकिन सदस्य राष्ट्रों द्वारा समुचित सामंजस्य के आव में तथा संबंधित देशों द्वारा सहयोग न देने के कारण ये प्रयास सफल नहीं हो सके हैं। अंतरराष्र्टीय स्तर पर अपराधिक न्याय से संबंधित समस्याओं के बारे में और इन समस्याओं के निराकरण के बारे में न्यायिक प्रणाली और न्यायिक प्रक्रिया से संबंधित विषयों पर आपके सुझाव न केवल देश की सरकार को

लाभान्वित करेंगे बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। इसके अतिरिक्त आपकी इस प्रकार की गोष्ठियां केवल विधि व्यवसाइयों और न्यायाधीशों को ही प्रेरित नहीं करेंगी बल्कि सामान्य नागरिकों को भी इन विषयों पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करेंगी। अतः विभिन्न विषयों पर आपकी गोष्ठियों का महत्वपूर्ण योगदान होगा।

हमारी सामाजिक व्यवस्था संक्रमण काल से गुजर रही है। वे अपधारणाएं जो कुछ वर्ष पूर्व हमें बुनियादी प्रतीत होती थीं, उनमें अब भारी परिवर्तन हो रहा है। हमारी न्याय व्यवस्था को इन परिवर्तनों के अनुकूल बनना है। इसे अधिक मानवतावादी तथा परिणामोन्मुख बनना है। वृहद वाद–व्यय और अत्यधिक विलंब दो ऐसी कमजोरियां हैं जो हमारी न्याय व्यवस्था की पहचान चिह्न बन गई है हैं। लोग फिर भी हमारी न्याय व्यवस्था में विश्वास रखते है और वो मुख्य रूप से इसलिए कि हमारी न्यायपालिका स्वतंत्र और प्रतिष्ठित है। भारतीय गणतंत्र के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने एक बार कहा था–

The tradition of independence of judiciary, which we have inherited, was present to very large extent even during the time when the British were ruling us and it is a rich heritage which we have got and we should add to it and increase it and I am quite sure that our judges have the capacity and they will to add to their dignity and to add to their reputation.

समय ने सिद्ध कर दिया है कि हमारी न्यायपालिका ने न केवल उपर्युक्त परम्परा को बनाये रखा वरन जो डा. राजेन्द्र प्रसाद ने पूना बार एसोसिएशन के समक्ष नवम्बर १९५९ में कहा था उसी पर खरी उतरी है।

इस सन्दर्भ में मैं कानून के प्रभुत्व और कानून के समक्ष समानता के विषय में कुछ कहना चाहूंगा। ये धारणाएं तो श्रेष्ठ हैं किन्तु प्रायः इनके क्रियान्वयन का परिणाम विद्यमान सामाजिक व आर्थिक असमानताओं को बनाये रखना ही होता है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने व्यक्ति और सामाजिक स्वतंत्रता पर संसद में हुई एक बहस का उत्तर देते हुए कहा था–

The majesty of law is such that it looks with an even eye on the millionaire or a beggar who steals a leaf of bread, the sentence is the same. It is all very well to talk about the equality of law for the millionaire and the beggar but the millonaire has not much incentive to steal a leaf of bread, while the starving beggar has. This business of the equality of law may very well mean, as it has come to mean often enough, the making of existing in–equalities rigid by law.

This is a dangerous thing and it is still more dangerous in a changing society.

न्याय प्रशासन और न्यायिक प्रक्रिया की समूची पद्धति को एक त्वरित एवं मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता है जो कि अपराध अन्वेषण की प्रारंभिक अवस्था से लेकर निर्णय की अंतिम अवस्था तक हो। एक तरफ हम अभियुक्त के मानवीय अधिकारों की बात करते हैं, दूसरी तरफ हम अपराध और अन्याय से पीड़ित असहाय लोगों और शोषित बच्चों व स्त्रियों को भी जिनके मानवीय अधिकार हम सभी के लिए मुख्य चिन्ता का विषय हैं, न्याय नहीं दे पाते हैं।

जहां तक वर्तमान में न्यायिक व्यवस्था तथा विशेष रूप से आपराधिक न्याय व्यवस्था का प्रश्न है, इस व्यवस्था की जन सामान्य द्वारा तीव्र एवं कटु आलोचना की जा रही है और धीरे-धीरे इस व्यवस्था में जन सामान्य का विश्वास उठता जा रहा है। अतः आपराधिक न्याय व्यवस्था में, न्याय प्रशासन में, न्याय प्रणाली की प्रक्रिया में, न्यायालयों की कार्य पद्धति में, अपराधों की विवेचना से लेकर निर्णय तक की स्थिति में, आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता का आभास हो रहा है। इधर अपराधियों के मानस अधिकारों के बारे में विशेष रूप से चर्चाएं हो रही हैं लेकिन अपराधों के शिकार निर्दोष असहाय व्यक्तियों, अत्याचारों से तृषित महिलाओं और शोषण से पीड़ित बच्चों को न्याय नीं मिल पा रहा है और उनके मानवीय अधिकारों पर चिन्ता व्यक्त नहीं की जा रही है। यहां तक की अपराधों के अन्वेषण, परीक्षण, दंड और पुनर्वास से संबंधित इकाइयों में मानवीय दृष्टिकोण का अभाव प्रतीत होता है और अपराधों के शिकार व्यक्तियों, उनके परिवार वालों तथा अपराधों साक्षियों को जो सुरक्षा ति सम्मान अपराधों की विवेचना के दौरान मिलना चाहिए वह नहीं दिया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप आपराधिक न्याय व्यवस्था में जनता का समुचित सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता है। अतः पुलिस, अभियोजक, अभिवक्ता, न्यायाधीश तथा कारागार और नुर्वास विभागों के अधिकारियों में एक तरफ तो सामंजस्य पेदा करने की आवश्यकता है और दूसरी ओर समूची आपराधिक न्याय-व्यवस्था के मानवीकरण की आवश्यकता है। अतः इस सम्मेलन में इन विषयों से संबंधित सूचनाएं एकत्रित करके अपराधों के अन्वेषण, अभियोजन और परीक्षण की प्रक्रिया में सुधार करने हेतु संस्तुतियां की जानी चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस सम्मेलन की गोष्ठियों में इन विषयों पर गंभीर रूप से विचार किया जायेगा और आपराधिक न्याय-व्यवस्था को सुदृढ़ तथा प्रभावशाली बनाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिये जाएंगे।

मेरे विचार से गोष्ठियों में विशेष रूप से निम्न बिन्दुओं पर भी विचार किया जाना चाहिएः-

१- आपराधिक न्याय की प्रक्रिया में विसंगतियों को दूर किया जाना और जटिल प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विलंब को कम किया जाना।

२– अपराधों की विवेचना और परीक्षण की प्रक्रिया का मानवीकरण करके आपराधिक कानून और प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाना तथा आपराधिक न्याय प्रणाली को समाज की सेवा के लिए और उपयोगी बनाना।

३– अपराधों की विवेचना, अभियोजन एवं परीक्षण के लिए प्रभावी तरीके प्रस्तावित करना।

४– आपराधिक न्याय से जुड़ी समसत इकाइयों में सामंजस्य स्थापित करने के आधार और तरीके प्रस्तावित करना।

५– विभिन्न प्रकार के अपराधों से संबंधित वादों के निस्तारण के लिए भिन्न–भिन्न योजनाएं प्रस्तावित करना और अपराधों से संबंधित वादों के शीघ्र निस्तारण की प्रक्रिया अपनाना।

अपराधों के शिकार व्यक्तियों और उनके परिवारों के लिए विशेष रूप से क्षतिपूर्ति, सुरक्षा और पुनर्वास की व्यवस्था करना।

अंत में मैं इस बात पर विशेष बल देना चाहूंगा कि प्रजातंत्र की सफलता के लिए और मानव की गरिमा को बनाये रखने के लिए तथा नागरिकों को मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा के लिए सुदृढ़, प्रभावी न्यायपालिका की महती आवश्यकता है, क्योंकि यदि प्रजातंत्र राज्य में शासन प्रणाली मानवीय गरिमा और व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए उपयोगी है तो प्रजातंत्र के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका उससे अधिक उपयोगी है।

अंततः मैं कहना चाहूंगा कि भारतीय धर्म शास्त्रों में कहा गया है कि न्याय, धर्म की रक्षा से ही व्यक्ति और समाज की रक्षा संभव है।

शिक्षा का सार्वभौमीकरण

कानपुर विश्वविद्यालय ने देश के मूर्धन्य विद्वान, समाजशास्त्री और नृ-शास्त्री डा. श्यामाचरण दुबे हिन्दी भाषा को अद्भुत गरिमा से मंडित करने वाली महान साहित्यकार श्रीमती गौरापन्त 'शिवानी', कवि, समीक्षक और दार्शनिक डा. एन.के. देवराज, महान चित्रकार तथा शिल्पी प्रो. अवतार सिंह पवार, विश्वविख्यात पुरातत्ववेत्ता तथा संरक्षणविद श्री ओपी अग्रवाल और ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक, विचारक तथा नियोजक डा. एस. वर्दराजन को मानद उपाधि देकर सम्मानित किया है। इनकी मनीषा का सम्मान कर विश्वविद्यालय स्वयं गौरवान्वित हुआ है। मैं इन मनीषियों का भी अभिनन्दन करता हूं।

कानपुर प्राचीन पांचाल प्रदेश का भाग रहा है। पास ही जाजमऊ तथा मूसानगर से अत्यंत प्राचीन सभ्यता के पुरावशेष प्राप्त हुये हैं। कहा जाता है कि यहां के निकट बिठूर नगर के उत्पलारण्य में ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति करने के बाद अश्वबलि दी थी। यह संसार में सबसे पवित्र स्थाना माना जाता है। १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धा नाना साहब, तात्या टोपे और अजीमुल्ला खान ने अपने शौर्य और रक्त से कानपुर के इतिहास का एक अध्याय लिखा। पं. मोतीलाल नेहरू ने यहीं अध्ययन किया। यह महान पत्रकार, साहित्यकार, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी की कर्म भूमि भी रही है। पारस्परिक सौहार्द और भाई चारे के लिए उन्होंने स्वयं को बलिदान कर दिया था।

आज यहां उपाधि प्राप्त करने वाले छात्रों ने जीवन का एक अध्याय पूरा कर लिया है। उनके जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हो रहा है पर केवल विश्वविद्यालय छोड़ देने से ही शिक्षा प्राप्त करना समाप्त नहीं होता। मनुष्य जीवन भर शिक्षा प्राप्त करता है। आपका भावी जीवन चुनौतियों से भरा होगा, जहां आपकी शिक्षा की वास्तविक परीक्षा होगी। इस उपाधि का तब ही महत्व होगा जब आप चुनौतियों का दृढ़ता से सामना कर सकेंगे। काठोपनिषद में कहा गया हैः-

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथः तत्कवयो वदन्ति।

उठो, जागो और सर्वोत्तम गुरुओं से ज्ञान प्रापत करो। जीवन का रास्ता चाकू की धार के समान कठिन है। एक उर्दू शायर ने भी कहा हैः-

ये इश्क नहीं आसां इतना तो समझ लीजे

इक आग का दरिया है और डूब के जाना है

देश और समाज के सामने आज गंभीर चुनौतियां हैं। धर्म, जाति और भाषा के नाम पर हमारी भावनात्मक एकता को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। विचारधारा का ह्रास होने से फासीवादी और अवसरवादी शक्तियां और नकली मसीहा हावी होने की कोशिश

कर रहे हैं। शिक्षा का सार्वभौमीकरण संभव नहीं हो सका है। पर्यावरण की सुरक्षा और प्रदूषण के संभावित दुष्प्रभावों के प्रति हम पूरी तरह सजग नहीं हो पाये हैं। संचार के क्षेत्र में हुई तकनीकी क्रांति के प्रभाव से हम उपभोक्ता संस्कृति के मोहक इन्द्रजाल में फंसते जा रहे हैं। नई पीढ़ी कर्म क्षेत्र से हटकर दिवा स्वप्न देखने वाली पीढ़ी होती जा रही है। जीवन के बदलते परिवेश के प्रति विवेकशील और तर्कसंगत दृष्टिकोण का अभाव है। मुझे वर्तमान संदर्भ में प्रसिद्ध आइरिश कवि डब्लू.वी. येट्स की प्रसिद्ध कविता The second coming की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं:–

Things fall apart; the centre cannot hold:
Mere anarchy is loosed upon the world.
The blood–dimmed tide is loosed, and everywhere
The cerymony of innocence is downed;
The best lack all conviction, while the worst
Are full of passionate intensity.

जैसा मैंने पहले कहा हमारी शिक्षा व्यवस्था की और हमारी शिक्षा की वास्तविक परीक्षा इसी से होगी कि हम इन चुनौतियों का सामना कितनी सफलता से कर पाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य आपको तकनीकी कौशल देना या आजीविका कमाने योगय बनाना मात्र नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य आपको सही और गलत की पहचान करने योग्य बनाना है। शिक्षा का उद्देश्य आपको योगिराज कृष्ण की विचारवान प्रज्ञा और अर्जुन की व्यावहारिक दक्षता देना है जैसा गीता के अन्तिम श्लोक में कहा गया है: 'यत्र योगेश्वरः कृष्णौ यत्र पार्थो धनुर्धरः।' अनेक वर्ष पूर्व इलाहाबाद विश्वविद्यायल में भाषण करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था:–

A university stands for humanism, for tolerance, for reason, for the adventure of the ideas and for the search of truth. it stands for the onward march of the human race towards higher objectives. if the universities discharge their duties adequately then it is well with the nation and the people.

सदियों से सहिष्णुता हमारे सोच की विशिष्टता रही है। वैदिक काल से हमारा विश्वास कुमार्ग से हटकर सत्य और निष्ठा के सन्मार्ग पर चलने पर रहा है:

धान्यवधानि कर्माणि
तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि।

धान्यस्माकम सूचरितानि
तानि तयोपस्यामि।
नो इतराणि।

आपके जीवन का क्या उद्देश्य हो सकता है– फैसला करने की बुद्धि शिक्षा से प्राप्त होती है। शिक्षा से ही आपको यह ज्ञान मिलता है कि देश और समाज आपके निजी स्वार्थ से ऊपर उठकर है। शिक्षित होकर ही आप अपने जीवन के उन महान उद्देश्यों को तय कर सकते हैं जो आपको वास्तविक उल्लास दे सकते हैं। आपका जीवन में यह उद्देश्य नहीं हो सकता कि सारी सृष्टि आपकी प्रसन्नता के लिए समर्पित रहे। बर्नार्ड शॉ ने कहा है:

This is the joy is life the being used for a propose recognised br yourself as a mighty one: The being throughly worn out before you are thrown on the scrap heap: The being a force of nature, instead of a feverish little clod of aliments and grievance, complaining that the world will not devote itself to making you happy.

डा. श्यामाचरण दुबे, जिन्हें हमने आज सम्मानित किया है, ने डा. राजेन्द्र प्रसाद स्मृति व्याख्यानमाला में विसामजिकरण और पुनर्सामाजिकरण की प्रक्रिया का विचार दिया था। समय के साथ पहले अपनाई गई रीति–नीति का अवमूल्यन होता है और पुराने मूल्यें के स्थान पर नई मान्यताओं और मूल्यों को हम ग्रहण करते हैं। इससे सांस्कृतिक निरन्तरता भी बनी रहती है और परिवर्तन भी होता है। परिवर्तन के साथ संस्कृति का नैरन्तर्य भी हमारे समाज की विशिष्टता रही है। शायद भारत और चीन की ही ऐसी सभ्यताएं हैं जहां ऐसी सांस्कृतिक निरन्तरता रही है।

डा. दुबे के जिन विचारों का मैंने उल्लेख किया वह उन्होंने संचार माध्यमों के संदर्भ में व्यक्त किये थे। पर तकनीकी की प्रगति ऐसी तेजी से हुई है कि संचार माध्यमों के द्वारा पम्परागत नैतिक मूल्यों का निरन्तर क्षरण हो रहा है और नई मान्यताओं का जन्म नहीं हो पा रहा है। इसीलिए हिंसा, असहिष्णुता, अश्लीलता और अनुशासनहीनता का वर्चस्व होने लगा है। डा. दुबे के ही शब्दों में 'संदेश, विचार और चिन्तन का स्थान ले रहे हैं।'

इसे रोकने की आवश्यकता है। शिक्षा के सामाजिक सरोकार की पुनर्स्थापना करने की आवश्यकता है। अपनी महान सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर को तेजी से परिवर्तनशील वर्तमान के संदर्भ में समझने की जरूरत है।

मैंने, जब भी मुझे अवसर मिला है, हर प्लेटफार्म से शिक्षा में गुणात्मक सुधार पर बल दिया है। देश में पिछले ४७ वर्षों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी बड़ा विस्तार हुआ। १९४७ में जहां देश में २५ विश्वविद्यालय थे, १९९१ में इनकी संख्या १७७ हो गई। १९४७ से १९९१ के बीच महाविद्यालयों की संख्या ७०० से बढ़कर ७,००० हो गई। इसी अवधि

में छात्रों की संख्या दो लाख से बढ़कर ४२ लाख हो गई। पर साथ ही शिक्षा की गुणात्मकता में पतन हुआ। मेरा सुझाव है कि विश्वविद्यालय स्तरहीन पाठ्य पुस्तकों और कुंजियों से छुटकारा पाएं। उच्च स्तरीय पाठ्य पुस्तकें विश्वविद्यालयों में लिखी जाएं। पहले ऐसी परम्परा रही है। भौतिक शास्त्र में 'ऊष्मा' विषय पर डा. मेघनाद शाहा की पचास वर्ष पुरानी पुस्तक आज भी पढ़ी जाती है। डा. गोरख प्रसाद की गणित की, डा. ईश्वरी प्रसाद की इतिहास की, डा. ए.डी. पन्त की राजनीति शास्त्र की पाठ्य पुस्तकें आज भी याद की जाती हैं। आज भारतीय भाषाओं में उच्च स्तरीय पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन की और भी अधिक आवश्यकता है।

दूसरी आवश्यकता विश्वविद्यालयों के सत्र के नियमितीकरण की है। इस ओर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है। यदि तीन–तीन वर्षों तक परीक्षाएं न हों और परीक्षाफल न निकलें तो युवाओं में आक्रोश तथा कुण्ठा होना स्वाभाविक है।

हमारी सरकार शिक्षण संस्थाओं में व्यवस्था को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए कटिबद्ध है। मेरी छात्रों और शिक्षकों से अपेक्षा है कि वे इस काम में सहयोग करें।

तीसरी आवश्यकता विश्वविद्यालयों में शोध कार्य को प्रोत्साहन देने की है। जब तक उच्च शिक्षा के संस्थानों में स्तरीय शोध कार्य नहीं होगा तब तक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार नहीं होगा।

शोध कार्य तथा शैक्षणिक वातावरण में सुधार के लिए विश्वविद्यालयों को काफी संसाधन स्वयं जुटाने के लिए प्रयास करना चाहिए। मेरा कुलपतियों, महाविद्यालयों के प्राचार्यों तथा विभागों के अध्यक्षों से अनुरोध है कि शैक्षिक नवाचार द्वारा तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी संस्थाओं के सहयोग से अपने संसाधनों की एक–तिहाई राशि स्वयं जुटायें। आज के आर्थिक उदारीकरण के युग में मेधावी युवाओं के लिए स्वरोजगार में लगकर आत्मनिर्भर होने के अनेक अवसर हैं। अतः विश्वविद्यालयों को अधिक से अधिक उपयोगी व्यावसायिक पाठ्क्रम प्रारम्भ करने चाहिए। इससे शिक्षा की उपादेयता बढ़ेगी।

विश्वविद्यालय के छात्र–छात्राओं की सामाजिक कार्यों में महती भूमिका हो सकती है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में निरक्षरों को साक्षर बनाने के लिए अपनी सेवाएं देकर और पर्यावरण और परिवार कल्याण आदि क्षेत्रों में जन चेतना जागृत करने में युवाओं की अहम भूमिका हो सकती है। पर सबसे महत्वपूर्ण भूमिका सामाजिक ताने–बाने को छिन्न–भिन्न होने से बचाने में है। जैसा मैंने पहले कहा सभी विचारों के लिए सहिष्णुता हमारी संस्कृति की विशिष्टता रही है।

भारत को किसी ने नहीं जीता। भारत ने ही जीतने वालों को जीता है। पर अब बाहर से हमें इतना खतरा नहीं है जितना अन्दर से। यह आवश्यक हो गया है कि सभी असहिष्णु विचारों के विरुद्ध युवा वर्ग लामबन्द हो। इन दूषित विचारधाराओं का विरोध चुप रह कर नहीं किया जा सकता। इनके विरुद्ध सक्रिय पहल आवश्यक है।

मुझे विश्वास है कि देश की एकता, अखंडता और अस्मिता की रक्षा आपके जीवन का मूलमंत्र होगा। मौ अन्त में ऋग्वेद की प्रार्थना से अपने कथन को विराम देता हूंः–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम।
देवा भागे यथापूर्वे संजानाना उपासते।
समानी वा अकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुहासति।

समग्र बाल विकास और परिवार

मुझे महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पंक्तियां याद आ रही हैं: children are evidence of fact that god has not yet despaired of man. बच्चे इस बात का प्रमाण हैं कि ईश्वर अभी भी मनुष्य से निराश नहीं हुआ है। एक और अवसर पर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ही कहा था कि मनुष्य की आकांक्षाएं बच्चों के वेश में प्रकट होती हैं। कवि वड्र्सवर्थ ने कहा है– Child is the father of the man.

आज की बालिका और बालक ही कल के नागरिक बनेंगे बचपन में जो संस्कार बालकों को मिलेंगे, जैसा उनका मानसिक विकास होगा, जैसी उनके स्वास्थ्य की देखभाल होगी उसी के अनुरूप भावी नागरिक का विकास होगा।

राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के अधिकारों पर चर्चा का इतिहास साठ वर्ष पुराना है। वर्ष १९२४ में बाल अधिकारों पर जिनेवा घोषणा हुई थी। वर्ष १९५९ में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 'बाल अधिकारों की घोषणा' को अपनाया गया। इसे मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अपनाया गया। २२ अगस्त १९७४ को भारत में बच्चों के संबंध में राष्ट्रीय नीति अपनाई गयी। २० नवम्बर १९८९ को संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा द्वारा 'कन्वेन्शन आन दि राइट्स आफ दि चाइल्ड' अपनाया गया। ३० सितम्बर १९९० को न्यूयार्क में 'वर्ल्ड समिट आन चिल्ड्रन' सम्पन्न हुआ। इसी के तारतम्य में भारत में भी १९९१ में वर्ष २००० तक के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना बनाई गई। १८ सितम्बर १९९२ को कोलम्बो, श्रीलंका में बच्चों पर 'सार्क देशों का प्रस्ताव' अपनाया गया।

कन्वेन्शन आफ द राइट्स ऑफ चिल्ड्रेन की प्रस्तावना में उल्लेख है: The child, by reason of his physical and mental immaturity, needs special safeguards and care including appropriate legal protection, before as well as after birth.

परिभाषा के अनुसार १८ वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को बच्चा माना गया है। १९९१ की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या लगभग ८८ करोड़ है। इसमें बच्चों की संख्या लगभग ३५ करोड़ है। स्पष्ट है इतनी बड़ी जनसंख्या का दायित्व मुख्यतः परिवार का ही हो सकता है। शैशव से किशोरावस्था तक बच्चों की परवरिश और सुरक्षा परिवार द्वारा ही हो सकती है। परिवार में ही सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं और संस्कृति से बच्चों का परिचय होता है। व्यक्तित्व के पूर्ण और समन्वित विकास के लिए बच्चों को ऐसे पारिवारिक परिवेश की आवश्यकता होती है जहां उन्हें भरपूर प्यार और सुरक्षा मिले और वे जीवन के उल्लास का अनुभव कर सकें।

मैंने पहले कहा था कि बच्चों के प्रति परिवार का उत्तरदायित्व जन्म के पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। यह शासन की नीति का मान्य सिद्धांत है कि गर्भवती महिलाओं को समुचित पोषण प्राप्त हो और उनकी सुरक्षा के लिए आवश्यक टीक उन्हें लगाये जाएं। प्रसव के दौरान होने वाली मृत्यु दर अभी भी अत्यंत चिन्ताजनक है। एक अनुमान के अनुसार एक लाख बच्चों के जन्म में लगभग ५०० महिलाओं की मृत्यु हो जाती है। कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या १३६० के लगभग है।

इसका कारण मुख्यतः कुपोषण, अस्वास्थ्यकर वातावरण, टिटनेस और स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव है। १९८७ में एक जांच के अनुसार ग्रामों में १५ से ४५ वर्ष आयु समूह की महिलाओं की मृत्यु का १३ प्रतिशत प्रसव के कारण था। समाज में महिलाओं की उपेक्षा और उनका हीन स्थान होना भी इसका कारण है। आज भी प्रति वर्ष लगभग २७ लाख बच्चों की माताओं की आयु १९ वर्ष से कम है। यह आवश्यक है कि परिवार में बालिका की स्थिति में सुधार हो। उसे उतना ही पोषण मिले जितना बालक को मिलता है। उसे शिक्षा के उतने ही अवसर मिलें जितने उसके भाइयों को मिलते हैं। जब तक परिवार में महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होता तब तक परिवार का भविष्य बहुत उज्जवल नहीं हो सकता।

बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल परिवार का दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व है। यद्यपि पिछले वर्षों में ५ वर्ष से कम के बच्चों की मृत्यु दर पिछले तीन दशकों में काफी कम हुई है, फिर भी अब भी यह बहुत अधिक है। १९६० में २३६ से घटकर यह १२४ रह गई है। यह दर चीन में ४३, वियतनाम में ४९, मेक्सिको में ३३, थाइलैंड में ३३, क्यूबा में ११, अमेरिका में १० और जापान में ६ है। इस प्रकार भारत के समकक्ष देशों में भी यह मृत्यु दर तुलनात्मक रूप से काफी कम है। इस स्थिति में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि टीकाकरण कार्यक्रम को सक्रिय किया जाये। इस संदेश को हर घर, हर परिवार के पास पहुंचाना जरूरी है। टेक्नालाजी मिशन के अंतर्गत दूर–दराज के इलाकों में कोल्ड चेन की सहायता से वेक्सीन पहुंचाई जा चुकी है। अब आवश्यकता पालकों को प्रेरित करने की है। डायरिया से बहुत बड़ी संख्या में बच्चों की मृत्यु होती है। इसके लिए जीवन रक्षक घोल को अधिक लोकप्रिय बनाना चाहिए।

कुपोषण बच्चों की असमय मृत्यु या उनके शारीरिक और मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाने का महत्वपूर्ण कारण है। आंगनवाड़ियों तथा बालवाड़ियों को अधिक सक्षम बनाकर इसे दूर किया जा सकता है। भारत का एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम इस तरह का दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। लगभग ढाई लाख गांवों में एक करोड़ तीस लाख बच्चों और ३० लाख माताओं को इसका लाभ प्राप्त है। पर इन संस्थाओं के काम–काज में बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है।

बच्चों की, विशेषकर बालिकाओं की शिक्षा के लिए भी पालकों को प्रेरित करना आवश्यक है। जब तक गांव–गांव में पालक शिक्षा का महत्व नहीं समझेंगे तब तक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान

देने की आवश्यकता है। एक बालक को शिक्षित कर आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं। एक बालिका को शिक्षित कर आप पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं।

परिवार कल्याण कार्यक्रम को भी गंभीरता से क्रियान्वित करना आवश्यक है। वर्ष २००० से हमारी जनसंख्या १०४ करोड़ हो जायेगी। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होगी कल्याणकारी कार्यक्रमों की पहुंच उतनी ही कम होगी। बड़े परिवार में बच्चों से मिलने वाली सुविधाएं भी उसी अनुपात में कम होंगी और स्वाभाविक ही है कि उन पर ध्यान भी कम दिया जा सकेगा।

परिवार में बच्चे और महिलाएं अक्सर हिंसा का शिकार होते हैं। आपने कुछ माह पूर्व अमेरिका के उस प्रकरण के बारे में पढ़ा होगा जिसमें एक बालक ने अपने माता–पिता को तलाक देने के लिए अदालत की शरण ली। अदालत ने उसका प्रार्थना पत्र स्वीकार भी किया। बालक को शासन के सुपुर्द किया गया। इस प्रकार की हिंसा से बच्चे कुंठा का शिकार होते हैं और उनमें हिंसक प्रवृत्तियां बढ़ती हैं। असुरक्षा की भावना से ग्रस्त यह बच्चे बड़े होकर अपराधी बन जाते हैं।

पालकों में विशेष पिता में एलकोहलिज्म और जुआ खेलने की अदात में भी सुधार के लिए सामाजिक अभियान छेड़ना आवश्यक है। आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारों में यह आदत बच्चों के विनाश का कारण बनती है।

बच्चों को संस्कारवान बनाने में परिवार की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। बचपन के संस्कार ही सबसे स्थायी होते हैं। परिवार के बुजुर्गों से धार्मिक, सामाजिक आख्यान सुनकर और अपने पूर्वजों के बारे में जानकारी प्राप्त कर बच्चे न केवल संस्कारवान होते हैं वरन कल्पनाशील भी बनते हैं।

परिवार की गरीबी का सीधा सम्बन्ध बच्चों के भविष्य पर पड़ता है। जब तक बच्चों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होगी तब तक उनका विकास नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त बच्चे खेलना, पढ़ना–लिखना छोड़कर बाल श्रमिक बनने पर विवश हो जाते हैं। इस संबंध में कवि राजेश जोशी की अत्यंत मार्मिक कविता को यहां उद्धृत करना चाहूंगाः

कोहरे से ढकी सड़क पर बच्चे
काम पर जा रहे हैं
सुबह–सुबह
बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?

क्या अंतरिक्ष में गिर गयी हैं सारी गेंदें
क्या दीमकों ने खा लिया है
सारी रंग-बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गये हैं सारे खिलौने
क्या किसी भूकम्प में ढह गयी हैं सारी मदरसों की इमारतें
क्या सारे मैदान, सारे बगीचे और घरों के आंगन खत्म हो गये हैं एकाएक
तो फिर बचा ही क्या है इस दुनिया में?
कितना भयानक होता अगर ऐसा होता?
भयानक है लेकिन इससे भी ज्यादा यह
कि हैं सारी चीजें हस्बेमामूल
पर दुनिया की हजारों सड़कों से गुजरते हुए
बच्चे, बहुत छोटे छोटे बच्चे काम पर जा रहे हैं।

●

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'

शास्त्रों में कहा गया है 'मातृ देवो भवः'। नेपाल में महाराज नेपाल को श्री ५ महाराजा कहा जाता है। यह पूछे जाने पर कि श्री १ से ४ तक कौन हैं उन्होंने बताया कि श्री १ ईश्वर है। श्री २ माता है। ३ श्री पिता है और श्री ४ गुरु। मनुस्मृति में लिखा है 'एक आचार्य दस उपाध्यायों से अधिक गौरवशाली है। एक पिता सौ आचार्यों से अधिक गौरवशाली है। पर एक माता एक हजार पिताओं से अधिक गौरवशाली है।'

प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में महिलाओं का गौरवशाली स्थान रहा है। वास्तव में भारतीय इतिहास के सर्वाधिक गरिमामय और उन्नत अध्याय हम देखें तो पाएंगे कि उस समय महिलाओं का समाज में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान था। जब महिलाओं के स्तर में अवनति हुई तब देश की, समाज की, सभ्यता की भी अवनति हुई। यह बात भारत ही नहीं सारे विश्व इतिहास के संबंध में कही जा सकती है। किसी समाज की सही स्थिति का आंकलन उसमें महिलाओं के स्थान से किया जा सकता है। २२ जनवरी, १९५५ को मद्रास में एक महिला महाविद्यालय का शिलान्यास करते पंडित जवाहर लाल नेहरू ने एक फ्रांसीसी लेखक को उद्धृत करते हुए कहा था:–

If you want me to tell you what a nation is like, or what a social organisation is like, tell me the position of women in that nation.

जैसा मैंने कहा प्राचीन काल में हमारी सभ्यता में महिलाओं को समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था। कालान्तर में महिलाओं की शिक्षा, महिलाओं को कार्य करने के अवसर, महिलाओं के स्वतंत्र अस्तित्व में अवनति हुई। महिलाओं को दमन का सामना करना पड़ा। स्त्री का जैसे अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। वह बचपन में पिता की, वयस्क होने पर पति की और वृद्धावस्था में पुत्र की आश्रित हो गई। अधिकांश औरतें पराधीन हो गईं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस स्थिति का कितना सही चित्रण किया है: 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध और आंखों में पानी।' मैत्रेयी, गार्गी, अरुधति, लीलावती, मीराबाई, रजिया सुल्तान और झांसी की रानी के देश में ऐसा होना कितने आश्चर्य की बात है।

१९वीं शताब्दी में नवजागरण काल या रेनेसांस (Renaissance) के प्रारंभ में ही विचारवान समाज सुधारकों का ध्यान नारी दुर्दशा की ओर आकृष्ट हुआ। महिलाओं की शिक्षा पर बल देना, सती प्रथा का उन्मूलन, विधवा विवाह, सम्पत्ति में महिलाओं का अधिकार आदि के संबंध में प्रबल आवाज उठाई गई तथा कानून बनाये गये। बंगाल में राजा

राममोहन राय और देवेन्द्र नाथ टैगोर ने विधवाओं के पुनर्विवाह तथा सती प्रथा के उन्मूलन के लिए विशेष प्रयास किये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने १८४४ में महिलाओं के लिए बैथ्यून स्कूल प्रारंभ किया। केशवचन्द्र सेन ने बामबोधिनी नाम की मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया जो केवल महिलाओं के लिए थी।

उत्तर प्रदेश में इसी समय महाराज राय सालिगराम ने प्रेम पत्र नाम के एक प्रगतिशील विचारों के पाक्षिक का प्रकाशन प्रारंभ किया जिसमें पर्दा जैसी कुप्रथा का विरोध तथा महिला साक्षरता का प्रचार किया गया। दक्षिण में विरसलिंगम पंतलु तथा वेंकट रत्नम नायडू ने देवदासी प्रथा के विरुद्ध सशक्त आवाज उठाई। पश्चिम में स्वामी दयानंद सरस्वती, महादेव गोविन्द रानाडे तथा धोंडो के केशव कर्वे ने महिला पुनरोत्थान के लिए आवाज उठाई।

१९वीं शताब्दी के अंत तक २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंडित रामाबाई, रामाबाई रानाडे, आनन्दीबाई जोशी आर मेडम कामा ने भी इस क्षेत्र में अपना स्थान बनाया।

२०वीं शताब्दी में भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी जैसे महापुरुष और समाज सुधारक के पदार्पण से क्रांतिकारी परिवर्तन का काल प्रारंभ हुआ। २६ फरवरी, १९१८ को यंग इंडिया में प्रकाशित उनका लेख उनके सोच को स्पष्ट दर्शाता है। उसे मैं कुछ विस्तार से उद्धृत करना चाहूंगाः

I am uncomoromising in the matter women's rights. In my opinionshe should suffer no legal disabilities, not suffered by man. I should treat the daughters and sons on a footing of perfect equality.

महात्मा गांधी ने यह समझ लिया था कि जब तक देश की ५० प्रतिशत जनशक्ति बंधन में होगी, अज्ञान तथा दमन के पॉश में बंधी होगी, तब तक स्वाधीनता का राष्ट्रीय संघर्ष गतिमान नहीं हो सकता। उनके आह्वान पर एकाएक सब बंधनों को तोड़कर महिलाएं स्वतंत्रता संग्राम के महासमर में कूद पड़ीं। सभी वर्गों की महिलाएं इसमें शामिल हुईं। अत्यंत सुकुमारता से पली अभिजात्य वर्ग की महिलाएं हों या मध्यम तथा निम्न वर्ग की स्त्रियां, सभी सारे बंधन तोड़कर आजादी की लड़ाई में हाथ बंटाने आ गईं। उनमें आत्मबलिदान की इतनी शक्ति, कठोर यातनाओं को सहने की शक्ति और इतना साहस कहां से आ गया यह देखकर सभी अचंभित थे। स्वरूप रानी नेहरू और कमला नेहरू जैसी स्त्रियां जिन्होंने कभी कोई कष्ट ही नहीं उठाया होगा, सहर्ष जेल की यातना सहन करने चली गईं। यह महात्मा जी की आध्यात्मिक शक्ति का चमत्कार था। गांधी जी के ही शब्दों मेंः

To call woman the weaker sex is libel; it is man's injustice to woman. if any strength is meant moral power, than woman is immeasurably man's superior. Has she not greater

intuition, is she not more self sacrificing, has she not greater powers of endurance, has she not greater coura Without her man could not be. If non-violence is the law of our being, the future is with the woman.

इसी समय सन १९२७ में मारग्रेट कजिन्स, बड़ोदरा की महारानी चिमनबाई गायकवाद और कमलादेवी चट्टोपाध्याय की पहल पर आल इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस की स्थापना हुई। महिलाओं की समस्याओं पर विचार करने के लिए स्थापित इस संस्था का स्त्री पुनर्जागरण में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस संस्था से कमलादेवी चट्टोपाध्याय, सरोजनी नायडू, दानवन्ती रामराव, राजकुमारी अमृत कौर, रेनुका राय और इसकी वर्तमान अध्यक्ष श्रीमती सरोजनी वर्दप्पन जैसी महान विदुषी महिलाओं का नाम जुड़ा है।

महिला शिक्षा तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र में इस संस्था का अविस्मरणीय योगदान है। गृह विज्ञान का प्रमुखतम महाविद्यालय लेडी इर्विन कालेज, दिल्ली इसी संस्था की देन है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए अनेक कानून बनाने की पहल ए.आई.डब्ल्यू.सी. ने की है। इनमें अनेक कानूनों के अतयंत दूरगामी परिणाम हुए हैं। चाइल्ड मेरिज रेस्ट्रेंट एक्ट, १९२९, बाल विवाह को वर्जित करने वाला दि शारदा एक्ट, १९३० स्पेशल मेरिज एक्ट, १९५४, दि हिन्दू कोड बिल, १९५६, दि सप्रेशन आफ इम्मोरल ट्रेफिक इन वीमेन एंड चिल्ड्रेन एक्ट, १९५६, दि प्रोहीबीशन आफ डावरी एक्ट, १९६१, दि मेटरनिटी बेनीफिट एक्ट, १९६१ आदि इसी की सक्रिय पहल का परिणाम हैं।

आज महिलाएं अनेक क्षेत्रों के साथ बराबरी से कन्धे से कन्धा मिला कर चल रही हैं। राजनीति, पुलिस, प्रशासन, प्रबन्धन, शिक्षा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, पर्यावरण से संबंधित आंदोलन, साहित्य, कला, संस्कृति सभी क्षेत्रों में महिलाओं की उपलब्धियां और योगदान अत्यंत महतवपूर्ण रहा है। आज महिलाएं व्यावसायिक वायु सेवा में कामर्शियल पायलट के रूप में काम कर रही हैं। वायु सेना, थल सेना और जल सेना ने अपने द्वार महिलाओं के लिए खोल दिये हैं। सभी क्षेत्रों में महिलाओं का योगदान अविस्मरणीय रहा है। श्रीमती इंदिरा गांधी को १९७१ में युद्ध के बाद श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने साक्षात दुर्गा की उपाधि दी थी। क्या देश किसी भी क्षेत्र में उनके अवदान को भुला सकता है? वे हमारी प्रेरणा की स्रोत हैं।

पर समता और बराबरी की यह लड़ाई समाप्त नहीं हुई है। जितनी आज तक उपलब्धियां हैं उनसे हमें संतुष्ट होकर बैठ नहीं जाना चाहिए। अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

शिक्षा के क्षेत्र में हमें बहुत कुछ करना है। यद्यपि १९५१ में ८.८६ प्रतिशत से १९९१ में महिला शिक्षा का प्रतिशत ३९.१९ तक बढ़ा है पर यह पुरुषों की शिक्षा के प्रतिशत से पीछे है। सबसे अधिक बल बालिकाओं की शिक्षा पर देना आवश्यक है। इसके लिए समाज के सभी वर्गों विशेषकर महिलाओं को आगे आना आवश्यक है। इसके लिए महिला

समाख्या– वीमेन्स एम्पावरमेंट १–१ आवश्यक है। महिलाओं के गांव–गांव में संगठन हों और वे आगे आएं और शिक्षा के काम को बढ़ावा दें। जब तक ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं को संगठित कर उनमें स्त्री शिक्षा के लिए चेतना का संचार नहीं होगा अब तक इस काम में हमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकती। इस संबंध में आल इंडिया वीमेन्स कान्फ्रेंस को पहल करनी चाहिए।

मेरा सुझाव यह भी है कि ग्रामों में आंगवनवाड़ियों तथा बालवाड़ी संगठनों को अधिक सुदृढ़ करना चाहिये। इससे शिशुओं की देखभाल तथा उनको पोषक आहार की प्राप्ति तो होती ही है पर साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि बालिकाओं को अपने भाई–बहनों की देखभाल करने के काम से मुक्ति मिलती है जिससे वे पढ़ाई के लिए समय तथा सुविधा प्राप्त कर सकती हैं।

यह भी देखा गया है कि कमजोर वर्गों की बालिकाओं के पास ठीक से पहनने के वस्त्र नहीं होते जिससे वे लज्जा के कारण शालाओं में नहीं आतीं। ऐसे वर्ग की बालिकाओं को कम से कम पूर्व माध्यमिक स्तर तक निःशुल्क वर्दी वितरण करना चाहिए।

मेरा यह भी मानना है कि सरकार को सभी स्तरों तक बालिका शिक्षा को निःशुल्क कर देना चाहिए ताकि आर्थिक दबाव के कारण उनकी शिक्षा में बाधा न पड़े। बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार को सक्रिय प्रोत्साहन की नीति अपनानी ही पड़ेगी।

जैसो प्रसिद्ध शिक्षाविद डा. राधाकृष्णन ने कहा है 'एक पुरुष को शिक्षित कर आप केवल एक व्यक्ति को शिक्षित करते हैं पर एक स्त्री को शिक्षित कर आप पूरे परिवार को शिक्षित करते हैं।'

विद्या की देवी सरस्वती हैं। देवी की एक स्तुति है 'या देवी सर्वभूतेषु, बुद्धि रूपेण संस्थिता' अर्थात हे देवी सभी जीवों में आप बुद्धि के रूप में स्थापित हैं। तब यह कैसी विडम्बना है कि महिलाओं को भी अशिक्षा से जूझना पड़ रहा है।

दहेज प्रथा जैसी कुरीति का समाप्त न होना हम सबके लिए अत्यन्त क्लेश तथा चिन्ता का विषय होना चाहिए। स्पष्टतः इस संबंध में कथनी तथा करनी में बड़ा अन्तर है। खेद है कि समाज के सबसे अधिक प्रबुद्ध तथा पढ़े–लिखे वर्ग इस रोग का जानबूझ कर शिकार बने हुए हैं। प्रशासनिक, पुलिस सेवा, इंजीनियर, डाक्टर जैसे वर्गों के लोग दहेज की मांग करते हैं या उनके माता–पिता द्वारा दहेज मांगे जाने पर मूक बने रहते हैं। जिन पर कानून पालन करवाने का महत्वपूर्ण दायित्व है उनके द्वारा कानून की ऐसी अवहेलना गंभीर विषय है। इसके लिए न केवल ऐसे व्यक्तियों को प्रताड़ित करना चाहिए, वरन सामाजिक चेतना जगाने का गंभीर प्रयास करना चाहिए। स्पष्ट है कि यह रोग केवल कानून से नहीं दूर होगा। इसके लिए पुरुषों को तथा महिलाओं को समान रूप से शिक्षित करना होगा, क्योंकि महिलाएं इसके लिए उतनी ही दोषी हैं जितने पुरुष। आज के युग में दहेज लोलुपों द्वारा

बहुओं को जलाने जैसी बर्बर घटनाएं होना हमारे समाज के लिए कलंक है। इस ओर भी ए.आई.डब्ल्यू.सी. को ध्यान देने की आवश्यकता है।

पश्चिम में महिला स्वतंत्रता आंदोलन ने आक्रामक रूप ले लिया है। केट मिलेट तथा जर्मेन ग्रीयर जैसी महिलाओं ने यद्यपि इसे बौद्धिक जामा पहनाया, पर साथ ही इसे कटु आक्रामकता भी दी। इससे परिवार टूट गये हैं, स्त्री–पुरुषों में कटुता उत्पन्न हो गई है और बच्चे उपेक्षित हो रहे हैं। इससे बच्चों में कुंठा बढ़ी है जिसका परिणाम वहां उत्पन्न हो रही हिंसा और सामाजिक विकृतियां हैं। हमें इससे सबक लेना चाहिए और पूरा प्रयास करना चाहिए कि हमारा महिला स्वतंत्रता आंदोलन कटुतापूर्ण और आक्रामक न हो और घर–परिवार की गरिमा बनी रहे। इस संदर्भ में मुझे डा. राधाकृष्णन के शब्द याद आ रहे हैं:

By the very quality of their being, women are the missionaries of civilization.

कविवर जयशंकर प्रसाद ने भी कहा है

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो।'

●

वर्तमान स्थिति और स्वतंत्रता सेनानी

आप सभी जानते हैं कि भारत को आजादी एक लम्बे संघर्ष के बाद प्राप्त हुई, जिसके लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, दांडी मार्च, नमक सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन तथा सम्पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए 'करो या मरो' का अभियान चलाया गया।

सच तो यह है कि लाखों-करोड़ों ज्ञात एवं अज्ञात वीर क्रांतिकारियों और महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने तन-मन-धन से स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय योगदान किया और अपने प्राणों तक की आहुति देने से भी कभी पीछे नहीं हटे। यह हमारे देश के वीर क्रांतिकारियों के ही संघर्ष का प्रतिफल है कि हम आज आजाद हैं और अपने देश का निर्माण करने में पूर्णतया स्वतंत्रत हैं।

उत्तरांचल के सभी जनपदों के पर्वतवासियों का भी स्वाधीनता आंदोलन में अग्रणी एवं सराहनीय योगदान रहा है। सन् १८५७ की क्रांति के दौरान सभी पहाड़ी जनपद के वीर क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जबरदस्त लड़ाई लड़ी थी। इस शताब्दी के प्रारंभ में बाल गंगाधर तिलक ने जब यह उद्घोष किया कि 'स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' तो देखते ही देखते पूरा देश वन्दे मातरम, भारत माता की जय और इंकलाब जिन्दाबाद के नारों से गूंज उठा।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश के अनेक शीर्षस्थ नेताओं ने भारत-वासियों में मातृभूमि की आजादी की ललक पैदा की। महात्मा गांधी के साथ ही पंडित जवाहरलाल नेहरू, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डा. भीमराव अम्बेडकर, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे अग्रणी नेताओं ने अंग्रेजों के विरुद्ध अनवरत संघर्ष करके उन्हें भारत छोड़ने पर विवश कर दिया।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान काकोरी कांड और चौरी चौरा कांड के बाद आजादी की लड़ाई और ज्यादा सक्रियता से शुरू हुई। यह वह जमाना था जब देशवासियों में अंग्रेजों के विरुद्ध एक शब्द भी कहना मौत को दावत देना था, किन्तु तब देशवासियों में विदेशी शासकों की दमनकारी नीति का डटकर सामना करने की नई शक्ति पैदा हो गई थी। असहयोग आंदोलन के दौरान विदेशी वस्त्रों, विदेशी वेशभूषा और विदेशी भाषा आदि का परित्याग कर सरकारी नौकरियों तथा न्यायालयों का भी बहिष्कार किया गया। इसके बाद स्वदेशी की भावना जनमानस में जागृत करने के लिए एक व्यापक अभियान शुरू किया गया।

यह फरवरी, १९२२ की बात है, महात्मा गांधी को क्रांतिकारियों द्वारा चौरी-चौरा (गोरखपुर) के पुलिस थाने में आग लगा देने के फलस्वरूप दरोगा सहित २३ पुलिसकर्मियों

के जलकर मरने की हृदय विदारक घटना की जब जानकारी मिली तो उन्हें बहुत दुःख पहुंचा। उन्होंने जब यह देखा कि असहयोग आंदोलन सत्य और अहिंसा के मार्ग से हटकर नफरत और हिंसा के रास्ते पर अग्रसर हो रहा है तो इस आंदोलन को फौरन रोक देने की घोषणा कर दी। क्योंकि वे अहिंसा के रास्ते ही देश को आजाद कराने पर विश्वास रखते थे।

मुझे चौरी–चौरा में १८ जुलाई, १९९३ को जाने का उस समय मौका मिल चुका है, जब भारत के प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव जी ने चौरी–चौरा शहीद स्मारक का उद्‌घाटन किया था। इस अवसर पर चौरी–चौरा कांड से संबंधित वीर शहीदों के आश्रितों एवं निकट सम्बन्धियों ने पेंशन सुविधा की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया, जो उन्हें नहीं मिल रही थी। मेरे सतत प्रयासों से प्रदेश शासन द्वारा १०७ स्वतंत्रता सेनानियों को पेंशन स्वीकार की गयी।

मैंने राज्यपाल के पद का कार्यभार ग्रहण करते ही सबसे पहले स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से मुलाकात का सिलसिला शुरू किया और अनेक वयोवृद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से उत्तर प्रदेश के विकास के बारे में विचार–विमर्श किया। इन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से मुझे ज्ञात हुआ कि उन्हें प्रदेश शासन द्वारा पेंशन के रूप में मात्र ७०० रुपये मिलते हैं। मैंने इस धनराशि को बढ़ाकर ८०० रुपये प्रतिमाह करने के आदेश दिये। स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने देश को आजाद कराने में जो अत्यंत सराहनीय भूमिका निभाई है, उन्हें केन्द्र एवं प्रदेश सरकार द्वारा जितनी भी ज्यादा सुविधाएं दी जाएं, वह उनकी सेवा के समतुल्य कभी नहीं हो सकतीं। उनकी सेवाओं के लिए देश सदैव ऋणी रहेगा और यह ऐसा ऋण है, जिसे देश की भावी पीढ़ियां कभी अदा नहीं कर सकतीं।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों ने जिस लगन, साहस और निर्भीकता से संघर्ष करके भारत को आजाद कराने में जो अग्रणी भूमिका निभाई थी, आज फिर समय आया है कि देश की वर्तमान नाजुक स्थिति में वे खामोश न बैठें और देश की युवा पीढ़ी में राष्ट्र–प्रेम की भवना जागृत करने तथा भारत के क्रांतिकारियों की गौरव गाथा की उन्हें पूरी जानकारी दें, जिससे उन्हें यह पता चल सके कि हमें यह आजादी आसानी से नहीं हासिल हुई, बल्कि इसके लिए वर्षों तक अनवरत संघर्ष करना पड़ा तथा बेशुमार वीर क्रांतिकारियों को बेंत की सजा से लेकर जेल की कष्टदायी यातनाओं को बर्दाश्त करने के साथ ही अपने प्राणों तक का बलिदान देना पड़ा है।

●

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे राहुल सांकृत्यायन

महापंडित राहुल सांकृत्यायन के जन्म–शताब्दी समारोह का सिलसिला अभी जारी है। ९ अप्रैल १८९३ से १४ अप्रैल १९६३ तक की उनकी जीवन यात्रा रही। उनके संदर्भ में हम कह सकते हैं कि यात्रा ही उनका जीवन रही। अगर वास्तव में किसी को बहुआयामी व्यक्तित्व कहा जा सकता है तो वह राहुल जी ही हैं। वे घुमक्कड़ और यायावर थे। जीवन के ३७ वर्ष यायावरी में बीते। जनपद आजमगढ़ के पन्दहा गांव में केदारनाथ पांडे का जन्म हुआ। वैसे पिता का गांव आजमगढ़ का कनैला ग्राम था। जन्म से सनातनी ब्राह्मण। फिर परसा मठ, जो बिहार के छपरा जनपद में है, के उत्तराधिकारी स्वामी रामउदारदास बने। आर्य समाज के प्रभाव में कुछ समय प्रखर आर्य समाजी रहे। १९३० में श्रीलंका में बौद्ध धर्म ग्रहण किया और राहुल नाम प्राप्त किया। सांकृत्य गोत्र के थे इसलिए राहुल सांकृत्यायन हुए। १९३० में ही काशी–पंडित महासभा ने उन्हें महापंडित की उपाधि दी। कांग्रेस में रहे और असहयोग आंदोलन में भाग लिया। फिर कट्टर मार्क्सवादी हो गये। अंतिम दिनों में मार्क्स से विमुख हो गये।

वे बहुभाषी थे। जेल में थे तो संस्कृत में डायरी लिखते थे। हिन्दी, उर्दू, पालि, प्राकृत, तिब्बती, अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, चीनी और फ्रेंच, फारसी, अरबी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। लोक भाषाओं में उनकी अगाध रुचि थी। भोजपुरी में कविता लिखते थे और भाषण देते थे। बुंदेली कवि ईसुरी पर उन्होंने बहुत काम किया है।

वे बहुविधा कृतित्व के धनी थे। उन्होंने १५० पुस्तकों की रचना की जिनमें १३० प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग ५०,००० पृष्ठों का उनका लेखन है। उन्होंने उपन्यास और कहानियां लिखीं। 'वोल्गा से गंगा तक' में उनकी २० कहानियां मानव समाज के आठ हजार वर्ष के इतिहास की महागाथा प्रस्तुत करती हैं: ६००० ईसा पूर्व से सन् १९४२ तक। 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' नाम का उनका उपन्यास सामाजिक व्यवस्था को बदलने का आह्वान है। उन्होंने नाटक लिखे। उनकी आत्मकथा 'मेरी जीवन यात्रा' पांच खंडों में है। उन्होंने महामानव बुद्ध से लेनिन तक अनेक महापुरुषों की जीवनियां लिखीं। देश–विदेश के यात्रा वृत्तांत लिखे। घुमक्कड़ इतने थे कि 'घुमक्कड़ शास्त्र' लिख डाला। निबंध लिखे, विज्ञान और राजनीति पर लिखा। दर्शन पर अनेक पुस्तकें लिखीं जिसमें दर्शन–दिग्दर्शन

जैसा ग्रंथ है। धर्म पर लिखा। 'इस्लाम की रूपरेखा' से लेकर 'माज्झम निकाय' तक अधिकारपूर्वक लिखा। इतिहास ग्रंथ लिखे। 'मध्य एशिया का इतिहास' इनमें सर्वाधिक विख्यात है। साहित्य का इतिहास लिखा। उनमें मौलिक खोज की और नई अवधारणाएं प्रस्तुत की। शोध ग्रंथ लिखे, कोश लिखे, तिब्बती व्याकरण पर पस्तुक लिखी, अनुवाद किये और ग्रंथ सम्पादित किये।

उनके न पांव रुके और न लेखनी। कठिन से कठिन परिस्थितियों में लिखते रहे। १८-१८ घंटे श्रम किया। जर्मनी में मारबुर्ग विश्वविद्यालय के प्रख्यात प्रोफेसर रुडोल्फ ओटो उनसे मिले। ओटो संस्कृत, पालि आदि के उद्‌भट विद्वान थे। स्वामी राउदार दास के रूप में जब वे राहुल जी से मिले तो अवाक रह गये। उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि राहुल जी ने किसी विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त नहीं की। उन्होंने औपचारिक शिक्षा उर्दू मिडिल तक ही पाई थी। शेष स्वाध्याय का परिणाम था।

गुणाकर मुले ने स्वयंभू महापंडित नाम की राहुल जी की जीवनी लिखी है। उन्होंने लिखा है: 'उनमें प्रतिभा थी, तीव्र ज्ञान-पिपासा थी और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी परिश्रम करने की अपूर्व क्षमता थी। उनके जीवन में आलस्य के लिए कोई स्थान नहीं था। खूब तेजी से काम करते थे। तरुणाई के दिनों में अपनी जीवन-चर्या के बारे में कभी-कभी कहते भी थे: 'मैं सैकड़ों का तो नहीं, मगर अपने मिनटों का हिसाब अवश्य दे सकता हूं।'

यायावरी उनके स्वभाव में बचपन से ही थी। वे कहते थे कि आदमी अगर घुमक्कड़ नहीं होता तो सभ्यता का विकास कैसे होता। कोलम्बस और वास्को डिगामा नहीं होते, एक जगह से दूसरी जगह जाने वाले कबीले न होते, अगर वैज्ञानिक डारविन घुमक्कड़ी में गालापोगोस द्वीप नहीं पहुंचते तो हम कहां होते। बचपन में नवाजिन्दा-बाजिन्दा द्वारा रचित 'खुदराई का नतीजा' पढ़ रहे थे तो यह शेर पढ़ा:

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहां
जिन्दगी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहां

इस शेर ने उनके मन और भविष्य पर गहरा प्रभाव डाला। उनका जीवन यायावरी की महागाथा है। उन्होंने 'घुमक्कड़ शास्त्र' को प्रारंभ ही 'जयतु-जयतु घुमक्कड़ पंथा' से किया। उनके जीवन में यायावरी का ही प्रमुखतम प्रभाव है। कितने कष्ट उठाकर, खतरे मोल लेकर कई बार तिब्बत गये। अनेक दुर्लभ, प्राचीन ग्रंथ वहां से लाये, उन्हें संपादित किया और उन पर टीका लिखी। महान बौद्ध नैयायिक-दार्शनिक धर्मकीर्ति का ग्रंथ प्रमाणवार्तिक भारत से विलुप्त हो गया था। इस ग्रंथ का प्रज्ञारगुप्त द्वारा रचित भाष्य 'वार्तिकालंकार' और कर्णकगौमी द्वारा रचित 'स्ववृत्ति-टीका' उन्होंने खोज निकाली। ऐसे कितने दुर्लभ ग्रंथ उन्होंने खोजे और हमारे ज्ञान को समृद्ध किया।

वरिष्ठ पत्रकार श्री राजकिशोर ने अपने एक लेख में कहा कि 'राहुल में तो रचनात्मक द्वंद्वात्मकता इतनी अधिक थी कि उन्होंने अपनी कसौटी पर देश की हर महत्वपूर्ण विरासत

को परखा और जहां जरूरत हुई कटू से कटु आलोचना की।' एक दृष्टांत आपके सामने रखना चाहूंगा। ६ सितम्बर १९३७ को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में उनका भाषण 'हमारी कमजोरियां' विषय पर था। सभापति पंडित जवाहर लाल नेहरू थे। राहुल जी ने उन लोगों की खूब खबर ली जो पुरानी पोथियों में ज्ञान खोजा करते हैं। उन्होंने कहा कि पुरानी पोथियों में जहां अकल की बातें हैं वहीं बहुत बेवकूफियां भी हैं। राहुलजी के बाद पंडित जी खड़े हुए। पहले उन्होंने कहा कि राहुल जी जैसे चिन्तक हमारे विश्वविद्यालयों में क्यों नहीं पैदा होते। फिर बोले कि अगर पुरानी किताबों के बारे में मेरा जैसा आदमी कुछ कहता तो आप कहते कि तुम पुरानी किताबों के बारे में क्या जानो। पर राहुल जी तो पुराने ज्ञान में तैरते ही रहे हैं। राहुल जी की साफगोई से तिलमिलाये एक श्रोता ने कहा कि तैरते ही रह गये– पार तो नहीं हुये। तत्क्षण पंडित जी बोले कि पार तो कुएं के मेढक होते हैं, ज्ञान के समुद्र में तैरने वाले विद्वान नहीं।

वे पुरातन के मिथ्याभिमान के विरुद्ध थे। 'तुम्हारी क्षय' पुस्तक में उन्होंने लिखा हैः 'इतिहास–इतिहास', 'संस्कृति–संस्कृति' बहुत चिल्लाया जाता है। मालूम होता है, इतिहास और संस्कृति सिर्फ मधुर और सुखमय चीजें थीं। पचीसों बरस के अपने समाज का तजुरबा हमें भी तो है। यही तो भविष्य की संतानों का इतिहास बनेगा। आज जो अंधेर हम देख रहे हैं, क्या हजार साल पहले वह आज से कम था? हमारा इतिहास तो राजाओं और पुरोहितों का इतिहास है जो कि आज की तरह उस जमाने में मौज उड़ाया करते थे।'

वे पुराने में जो बुरा था उसे त्यागने और जो अच्छा है उसे स्वीकार करने, बनाये रखने के पक्ष में थे। 'बौद्ध संस्कृति' के प्रारंभ में उन्होंने लिखा हैः 'संस्कृति वसतुतः देश जाति से संबंधित है, धर्म के साथ उसका नाता जोड़ना गौण रीति से ही हो सकता है। जाति के साथ संस्कृति या संस्कार का संबंध वैसे ही है, जैसे नये घड़े में घी या तेल भर के कुछ दिन रखकर उसे निकाल देने पर घड़े के भीतर प्रविष्ट स्नेह का अंश बचा रहता है। एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार, रुचि–अरुचि, कला, संगीत, भोजन–छाजन या किसी और आध्यात्मिक धारणा के बारे में कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड़ जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत–सी पीढ़ियां आती–जाती रहती हैं, और सभी अपना प्रभाव या संस्कार अगली पीढ़ी पर छोड़ती जाती हैं। यही प्रभाव संस्कार, संस्कृति है।' इसीलिए वे संस्कृति को अचल नहीं मानते थे। पूर्वजों से आ रहे हमारे संस्कार निरंतर रुपांतरित होते हैं। 'काशी तक पहुंचने पर गंगा का वही जल नहीं रह जाता जो गंगोत्र में देखा जाता है, तो भी गंगा का अपना एक व्यक्तित्व है।'

यही राहुल सांकृत्यायन की विशेषता थी। उनमें नये–पुराने के प्रति पूर्वाग्रह नहीं थी। उनमें सत्य के प्रति निष्ठा थी। हर बात को वे तर्क पर तौलते थे और विवेकपूर्वक मार्गदर्शन करते थे।

श्री राजकिशोर ने किसी संदर्भ में लिखा है कि 'राहुल उन बुद्धिजीवियों में अप्रतिम हैं, जिन्होंने हमारी भाषा में हमसे हमारा परिचय कराया।' राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनका विशेष मोह था और उसे उन्होंने अपने लेखन से समृद्ध भी बहुत किया। इसलिए हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व भी किया। हिन्दी ही नहीं लोक–भाषाओं के विकास के प्रति भी वे सजग थे। 'हिन्दी की काव्यधारा' में उन्होंने अपभ्रंश के हिन्दी के वर्तमान स्वरूप पर प्रभाव के बारे में लिखा, विस्मृत कवियों की खोज की और उनका महत्व प्रतिपादित किया।

सनातन धर्म से बौद्ध धर्म तक यात्रा कर वे अनीश्वरवादी और नास्तिक हो गये। उन्होंने धर्म के संबंध में लिखा है: 'भिक्षुओं में नौका की तरह धर्म का उपयोग करता हूं। यह पार होने के लिए है, पकड़कर बैठने के लिए नहीं।'

इतिहास लेखन में भी वे पूर्वाग्रह मुक्त थे। 'अकबर' उनकी एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। वे लिखते हैं: 'अशोक के बाद हमारे देश में महान ध्रुवतारा अकबर ही दिखाई पड़ता है। अकबर सही अर्थों में देशभक्त, अपने राष्ट्र का परम उन्नायक था। अकबर का रास्ता आज बहुत हद तक हमारा रास्ता बन गया है। अकबर १६वीं सदी नहीं, २०वीं सदी का हमारे देश का सांस्कृतिक पैगम्बर है।' अकबर के संदर्भ में उन्होंने संस्कृति, साहित्य, भाषा, धर्म आदि विभिन्न मुद्दों पर बेबाक विचार रखे हैं। स्वयं का उदाहरण रखते हुए उन्होंने लिखा: 'संस्कृति और धर्म एक चीज नहीं है, इसका उदाहरण मैं स्वयं हूं। बुद्ध के प्रति बहुत सम्मान रखते हुए भी, उनके दर्शन को बहुत हद तक मानते हुए , मैं अपने को बौद्ध धर्म का अनुयायी नहीं कह सकता। अनुयायी होता, तो भी भारतीय संस्कृति को अपनी प्यारी संस्कृति मानता, पूरा नास्तिक होते हुए भी भारतीय संस्कृति के प्रति मेरा वैसे ही आदर और अटूट संबंध है। इसलिए मैं दावे के साथ अपने को उस संस्कृति का उत्तराधिकारी मानता हूं। किसी की मजाल नहीं कि मुझे इस हक से वंचित कर सके या उग्र स्वतंत्रत विचारों के लिए मुझसे संबंध–विच्छेद कर सके।'

वे डायरी नियमित लिखते थे। जेल में संस्कृत में डायरी लिखते रहे। इनका नियमित लेखन में उनको बहुत लाभ मिला। उनका लेखन बहुत तेज होता था। 'घुमक्कड़ शास्त्र' उन्होंने १५ दिन में लिखा था। तीन–चार ग्रंथ एक साथ लिखते थे। उनकी मेधा अद्भुत थी। विभिन्न विषयों के ग्रंथ साथ–साथ लिखवाते थे। १५–१६ वर्ष की आयु में जनपद आजमगढ़ से निकले तो निश्चय किया कि ५० साल की उम्र तक आजमगढ़ नहीं जाएंगे। १९४३ में जब आजमगढ़ गये तो जनपद का गहन भ्रमण कर वहां की पुरा सम्पदा पर पुस्तक लिखी। हिमालय के प्रति उनका स्थायी प्रेम था। अनेक पुस्तकें उन्होंने इस क्षेत्र के बारे में लिखी हैं।

प्रथम विवाह के बाद ही घर छोड़कर चले गये थे। पहली पत्नी को विवाह मंडप के बाद अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही दोबारा देख पाये थे। रूस में अनेक वर्ष रहे और वहां एलिना कोजोरोवस्काया से विवाह किया। उनका एक पुत्र ईगोर राहुलोविच वहीं है।

दार्जिलिंग में थे तो कमला परियार से विवाह किया जिससे उनकी दो संतान हैं। परिवार से कभी बंधे नहीं रह सके।

आज भी राहुल जी जैसे निष्ठावान और कर्मठ बुद्धिजीवियों की हमें आवश्यकता है। वे तो अपने आप में एक संस्था के समान थे। उन्होंने अकेले जो काम किया वह अब किसी अकेले के बूते की बात नहीं है। अकेले न सही पर किसी शोध संस्थान को उनका काम आगे बढ़ाना चाहिए। अनेक प्राचीन, दुर्लभ ग्रंथ आज भी अपने उद्धार के लिए किसी राहुल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। दक्षिण–पूर्व एशिया के अनेक देश हैं जिन पर भारतीय संस्कृति की गहरी छाप रही है। वहां अनेक पांडुलिपियां मिल सकती हैं जिनके मूल ग्रंथ भारत में नहीं मिलते। भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म के विषय में शोध–सामग्री प्राप्त हो जाती है। जरूरत इस बात की है कि राहुलजी की तरह कोई उन देशों की भाषा सीखकर गंभीर शोध में जुट सके।

राहुल जी के सम्पूर्ण कार्य को प्रकाशित करने की जरूरत है। इसकी जिम्मदारी किसी संस्था को लेनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि सरकार भी इस काम में सहायता करेगी।

आज युवा राहुल सांकृत्यायान के आह्वान 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' को सुनें और पलायनवादी प्रवृत्ति को त्यागकर पूरी निष्ठा से अपनी राष्ट्रीय अस्मिता की खोज करें। तब ही इस शताब्दी समारोह की सार्थकता होगी। उनकी सच्ची यादगार यही होगी कि उनके काम को बढ़ाया जाता रहे।

मानवता कल्याण के लिए धर्म-मजहब

दुनिया में हर दीन, धर्म या मजहब कुछ बुनियादी उसूलों पर टिके हैं। मानवता के कल्याण के लिए ही तो धर्म और मजहब हैं। दूसरों के लिए प्रेम, दूसरों पर करुणा, ममता, रहम, पूरी तरह ईश्वर और उसकी सृष्टि के लिए समर्पण यही धर्म का मर्म है। पवित्र कुरआन में सर्वप्रथम यही कहा गया हैः बिस्मिल्लाह–हिर–रहमान–इर–रहीम अल्लाह के नाम से जो उपकार करने वाला है, दयालु है।

ऐसा ही करुणा का संदेश महात्मा गांधी के प्रिय भजन में भी हैः 'वैष्णव जन तो तैने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।' गीता में कहा गया हैः–

'तेजः क्षमा धृतिः शोचमद्योहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीभाभिजातस्य भारत।।'

क्षमा, सुचिता, शुद्ध हृदय, घृणा और अहंकार से मुक्ति, यही दिव्य गुण हैं। गुरुवाणी में भी यही स्वर हैः

'अव्वल अल्लाह नूर उपाए
कुदरत के सब बन्दे,
एक रूप से सब जग उपज्यो
कौन भले कौन मंदे।।'

इन सब तानों–बानों से हमारी मिली जुली सभ्यता बुनी गई और सूफी संतों ने इसी जमीन पर मानव कल्याण के बीज बोए हैं।

श्री इकबाल अली ने अपनी किताब 'इस्लामिक सूफीज्म' में सूफी लफ्ज कैसे आया इस पर रोशनी डाली है। कुछ आलिमों का मानना है कि सफा अरब में एक कबीला था और ये लोग मक्का में सेवा करते थे। इससे सूफी लफ्ज की उत्पत्ति हुई। एक विचार यह है कि हश्र के दिन पुण्य करने वाले ये लोग पहली कतार या सफ में खड़े होंगे, इसलिये इन्हे सूफी कहते हैं। कुछ का मानना है कि ऊनी लिबास पहनने की वजह से ये सूफी कहलाये क्योंकि ऊन को सूफ कहा जाता है। कुछ विद्वान मानते हैं यूनानी सोफिस्ट लफ्ज से सूफी निकला है। पर इकबाल साहब मानते हैं कि यह लफ्ज सफा यानी स्वच्छ, पवित्र से निकला है। यानी जो पवित्र हृदय, पवित्र विचार और पवित्र जीवन का हो वह सूफी है। सूफी लफ्ज चलन में आने के पहले इन्हें मुकारब्बिन, यानी ईश्वर के नजदीक, साबिरीन यानी धैर्यवान, अब्रार यानी सदाचारी और जुहद यानी धर्मनिष्ठ कहा जाता था। यही मानवता का धर्म है। ऐसे ही पवित्र हृदय मानव कल्याण को अपना लक्ष्य बना सकते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है 'एके मानुषि जाति' अर्थात केवल एक ही जाति है और वह है मानव जाति। मानव के ईश्वर से, प्रकृति से और मानव से संबंधों पर और कायनात के बारे में सवाल पूछने या सृष्टि के संबंध

में जिज्ञासा से रहस्यवाद का जन्म हुआ। इस्लामी रहस्यवाद तसब्बुफ कहलाया। ११वीं शताब्दी में अल गलाजी नाम के ऐसे ही महान चिन्तक हुये। उन्होंने ज्ञान और भक्ति का समन्वय किया। उन्होंने फरमाया कि जो बात हम बुद्धि से नहीं जान सकते वह इन्ट्यूशन या सम्बुद्धि से जानते हैं। सत्य को समझा नहीं जाता, देखा जाता है। समझने का काम दिमाग का है, देख कर पहचानने का काम दिल का है। सृष्टि का रहस्य अक्ल से नहीं समझा जा सकता, दिल से समझा जाता है। महान शायर इकबाल ने भी कहा हैः 'जो अक्ल का गुलाम हो, वह दिल न कर कबूल।' उमर खैय्याम और अबुल अरा भी ऐसे ही चिन्तक थे।

इस्लाम में करुणा, प्रेम और दया के तत्वों ने सूफियों को बहुत प्रभावित किया। पवित्र कुरआन की एक पंक्ति है जिसमें कहा गया है कि अल्लाह का रहम उसके क्रोध को जीत लेता हैः My mercy triumphs over my anger.

प्रोफेसर रशीदुद्दीन खान ने अपनी किताब में भाईचारे और सहिष्णुता के हजरत मोहम्मद साहब के पैगाम का जिक्र किया है जिसे मैं उद्धृत करना चाहूंगाः

All men are equal in Islam... The Arab is not superior to the Ajami (non-Arab) nor an Ajami superior to the Arab, neither the white to the black nor the black to the white, except by the degree of righteousness that he displays in his transactions with each other...

Bring me not your geneologies but your good deeds.

इस जमीन पर सूफी मत पनपा और इसमें भारतीय दर्शन का भी बहुत योगदान रहा विशेषकर वेदान्त और बौद्ध धर्म का। प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने अपनी पुस्तक 'आवर हैरिटेज' में लिखा है कि 'सूफी मत का आधार कुरआन में था, किन्तु, भारतीय परम्परा का इस पर अत्यंत गंभीर प्रभाव पड़ा है। इसके विकास में योगदान ईसाइयत, अभिनव, अफलातूनी मत, जरथुस्त्री मत और मैनिज्म से भी मिला किन्तु वाह्य प्रभावों में सबसे बड़ा प्रभाव हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म से ही आया है। 'फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, शेख सादी और हाफिज या तो भारत आये थे या अपने मुल्क में ही भारतीय विचारों से प्रभावित हुये।

इस तरह जब सूफीवाद भारत आया तो जैसे यह अपने ही घर लौटा। यही कारण है कि यहां की जनता ने चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान- सूफियों को आदर और सम्मान दिया।

हमारा प्रदेश प्राचीन काल से ही नये-नये विचारों के प्रवर्तन में आगे रहा है। गौतम बुद्ध और महावीर यहीं हुये। इन्होंने धर्म को एक नयी दिशा दी। इसी तरह उत्तर प्रदेश में महान सूफी संत भी पैदा हुये। निजामुद्दीन औलिया बदायूं में और अमीर खुसरो एटा में पैदा हुये। पिछले वर्ष अला-उद-दीन साबिर पीरान कलियार के उर्स में सहारनपुर में मुझे शरीक होने का मौका मिला। महान सूफी शेख नसीर-उद-दीन थे जो रौशन चिराग-ए-अवध कहे जाते थे। पिछले एक साल में अनेक महान सूफी सन्तों के उर्स में शामिल होकर मुझे पता चला

कि यहां कैसी महान आत्माओं ने मानव कल्याण का पाठ पढ़ाया है। सूफी मार्ग के महान कवि कबीर और जायसी यहीं के थे।

हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता और हेल-मेल बढ़ाने का काम सूफियों ने किया। धार्मिक कट्टरता से उनकी पूरी मुक्ति और सत्ता के अत्याचारों तथा व्यवस्था की जड़ता के खिलाफ बागी प्रवृत्ति ने जहां सामान्य जनों को रिझाया वहीं सुलतानों को नाराज भी किया। कहते हैं कि गयासुद्दीन तुगलक ने निजामुद्दीन औलिया साहब को हुक्म दिया कि वे फलानी तारीख को दरबार में हाजिर हों। निजामुद्दीन औलिया तो दरबार में नहीं गये पर गयासुद्दीन तुगलक का उस दिन इंतकाल हो गया। श्री खुशवंत सिंह ने अपने उपन्यास 'देहली' में इसका मार्मिक वर्णन किया है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'संस्कृति के चार अध्याय' नाम की पुस्तक में लिखा है: 'जब सूफी धर्म अपनी बुलन्दी पर था तब तक भक्ति का आंदोलन दक्षिण भारत से उत्तर में पहुंच चुका था। इन दोनों आंदोलनों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दूरी कम कर दी।' मानव कल्याण के लिए इससे बढ़कर क्या हो सकता है कि साम्प्रदायिक सौहार्द के वातावरण में कला साहित्य और संस्कृति की प्रगति हो। आज इतिहास के विद्यार्थियों को छोड़कर कौन इन सुल्तानों को जानता है। पर आज भी सूफी सन्तों का हर साल उर्स मनाकर लाखों लोग अकीदत का इजहार करते हैं। यह उनकी मानवता की सेवा का ही परिणाम है। इन सूफियों ने साहित्य की प्रगति का केवल मार्ग ही प्रशस्त नहीं किया वरन साहित्य रचना भी की और नई भाषा भी ईजाद की। आज अनेक विद्वान अमीर सुखरो को खड़ी बोली गढ़ने का श्रेय देते हैं। उनकी अनेक पहेलियां तो आज भी प्रसिद्ध हैं। निजामुद्दीन औलिया के इंतकाल पर आपने फरमाया था:

'खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए एक रंग।
गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस,
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहूं देस।।'

सूफी मत में ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्थन की भावना थी। गुलशन-ए-राज नाम के ग्रंथ में एक फारसी शेर है-

'कसी मर्दई तमान उस्त कुज तमामी
कुनाद बा खवाजगी करी गुलामी।।'

वही पूर्ण मनुष्य है जो अपनी पूर्णता और तमाम कुछ हासिल होने के बावजूद गुलामी करे। यहां तात्पर्य ईश्वर की गुलामी या ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण है। प्रसिद्ध दक्किनी कवि मौलाना चारी ने भी कहा है कि ईश्वर सर्व व्याप्त है। वह बड़ी और छोटी हर चीज में बराबर है। उनका एक उद्धरण है:

'ये रूप तेरा रत्ती रत्ती है
परबत परबत पत्ती पत्ती है

परबत में अधिक ना कम पत्ती में
यक सान रहाई रस और रत्ती में।

जायसी जैसे महान प्रेम मार्गी कवि सूफी मत में हुये। उन्होंने 'अखरावट' ग्रंथ की रचना की जिसमें वर्ण माला के एक-एक शब्द को लेकर सिद्धान्त संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयां कही गई हैं। जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार 'पदमावत' है। डा. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'इसके पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसी कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में उनकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।'

महात्मा कबीरदास तो विद्रोह के अवतार ही थे। इनकी प्रासंगिकता आज भी है और आज भी हिन्दू और मुसलामन दोनों इन्हें अपना मानते हैं। कबीर कभी विरोध से नहीं डरे और उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को उनकी कुरीतियों के लिए फटकारा। वे कहते थेः-

'हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना,
आपस में दोउ लड़े मरत हैं, भेद न कोई जाना।'

वे हम सबको रहस्यवाद की उस सीमा तक ले जाना चाहते थे जिसकी सीमा नहीं है। तभी उन्होंने कहाः

'सुर, नर मुनि औ औलिया, ये सब बेलै तीर
अलह-राम की गति नहीं, तंह घर किया कबीर।
हृदय छांड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान,
मुनिजन महल न पावई तहां किया विश्राम।।'

पंजाब के सूफी कवियों को कौन भूल सकता है। बुल्ले शाह और वारिस शाह को आज भी पढ़कर मन रस में सराबोर हो जाता है। सूफियों का रास्ता वेदान्त का रास्ता है। कविवर दिनकर ने लिखा है कि 'स्वामी विवेकानन्द ने कल्पना की थी कि भारत का भावी धर्म वह है जिसमें वेदान्त का मन और इस्लाम का शरीर एकाकार होंगे।' मानवता के कल्याण का यही रास्ता है कि सबकी बराबरी का दर्जा हो, मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव न हो, एक दूसरे के प्रति प्रेम, सौहार्द और सहिष्णुता हो और दुनिया में अमन चैन बना रहे। यही सूफियों का मूल मंत्र है। मैं अंत में पवित्र कुरआन के अंग्रेजी अनुवाद को उद्धृत करना चाहूंगाः

No one is believer if he dose not wish for his brother that which he wishes for himself....To each house there is a key : the key to paradise is love for the little ones and the poor.

मैथिलीशरण गुप्त और हिन्दी राष्ट्रभाषा

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त सच्चे अर्थों में राष्ट्रकवि थे। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में वे खड़ी बोली के प्रतिष्ठापकों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हिन्दी कविता को उसके विकास काल में गुप्त जी ने निखारा, सजाया, संवारा और गढ़ा। जीवन का पांच दशक से अधिक समय उन्होंने साहित्य साधना में लगाया। खड़ी बोली में कविता के शैशवकाल से उन्होंने लिखना प्रारंभ किया। १९६४ में जब उनका देहान्त हुआ हिन्दी कविता विश्व साहित्य में अपना स्थान बना चुकी थी। उनके जीवन में ही हिन्दी काव्यधारा ने कितने मोड़ लिये, उसके प्रबंध तथा शिल्प में कितने परिवर्तन हुये और प्रयोगशील कवियों ने उसे समकालीन चेतना अनुरूप विकसित किया। यह राष्ट्रकवि की जीवंतता, गतिशीलता और रचनात्मकता का परिचायक है कि उन्होंने इतने परिवर्तनों के बावजूद अपनी पहचान बनाये रखी।

गुप्त जी का जन्म भारतीय इतिहास में संक्रमण काल में हुआ। १८५७ के विप्लव के बाद भारत में राजनैतिक चेतना लुप्त हो गयी थी। पर दूसरी ओर १९वीं शताब्दी के तीसरे दशक से प्रारंभ हुई नवीन आधुनिकवादी चेतना का भी प्रसार हो रहा था। १८८५ में कांग्रेस का भी जन्म हुआ– गुप्त जी के जन्म से एक वर्ष पूर्व। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण नवीन विचारों का एक नया क्षितिज उद्घाटित हो रहा था। उनका जन्म पुरातन भारतीय संस्कृति में रचे–बसे वैष्णव परिवार में हुआ। पिता सखी सम्प्रदाय के थे और कविता लिखते थे। सखी–सम्प्रदाय में केवल ईश्वर को ही पुरुष माना जाता है और उसके प्रति आध्यात्मिक प्रेम सखी के रूप होता है। इसलिये कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इस पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा ऐतिहासिक परिवेश के कारण गुप्त जी में राष्ट्रवादी भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। इसीलिये उन्होंने लिखाः–

'राम तुम्हें यह देश न भूले,
धाम–धरा–धन जाये भले ही,
यह अपना उद्देश्य न भूले।
निज भाषा, निज भाव न भूले।
प्रभो तुम्हें भी सिन्धु पार से,
सीता का सन्देश न भूले।।'

गुप्त जी के लिये कविता मनोरंजन का साधन मात्र नहीं थी। वे कविता को राष्ट्रीय नवजागरण तथा नैतिक पुनरोत्थान का माध्यम मानते थे। देखा जाये तो यह भारतीय परम्परा के अनुरूप विचार है। प्राचीन काल से ही हमारा साहित्य सोद्देश्य रहा है। वेदों और उपनिषदों में जहां दर्शन और नीति के अत्यंत गूढ़ रहस्यों को व्यक्त किया गया है वहीं कल्पना की

सुन्दर उड़ान भी है। सौंदर्यपूर्ण भावाव्यक्ति ने इन ग्रंथों को साहित्यिक स्वरूप दिया है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य भी गंभीर दर्शन तथा उच्च कोटि की नैतिक शिक्षा का वाहक रहा है। 'रामचरित मानस' जहां एक ओर अनुपम साहित्यिक ग्रंथ है, वहीं दूसरी ओर नैतिक मूल्यों की दिशा निर्देशक भी है। कविता के संबंध में यही मान्यता गुप्त जी की भी थी। तब ही उन्होंने लिखा है:-

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये,
उसमें उचित उपदेश का मर्म होना चाहिये।
क्यों आज रामचरितमानस सब कहीं सम्मान्य है
सत्काव्य-युत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।
मृत जाति को कवि ही जिलाते रस-सुधा के योग से,
पर मारते हो तुम हमें उलटे विषय के रोग से।'

गुप्त जी का नई बातों को निस्संकोच सीखने का गुण अनुकरणीय है। नया ज्ञान और नये विचार कहीं से मिलें, उन्हें विनम्रता से गाह्य थे। वे दूसरों के सुझावों और आलोचनाओं को सहजता से लेते थे। जो ग्राह्य था उसे स्वीकार कर लेते थे और जो मान्य न था उसे विनम्रता से अस्वीकार कर देते थे। इसीलिये वे कभी कटु साहित्यिक वाद-विवाद में नहीं पड़े।

पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का उनके साहित्यिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। द्विवेदी जी झांसी में रेलवे में नौकरी करते थे और वहीं से 'सरस्वती' का सम्पादन भी करते थे। गुप्त जी पास ही चिरगांव के निवासी थे। पहली बार गुप्त जी जब द्विवेदी जी से मिलने गये तो संकोचवश उनसे कविता के बारे में बात ही न कर सके। 'सरस्वती' के लिये उन्होंने पहली कविता बृजभाषा में लिखने की सलाह दी। साथ ही उन्हें यह भी सलाह दी कि वे रसकेन्द्र उपनाम से लिखना छोड़ दें। बाद में 'हेमन्त', 'क्रोधाष्टक' आदि उनकी कविताओं को द्विवेदी जी ने सुधार कर प्रकाशित किया।

१९१० में जब गुप्त जी की पहली पुस्तक 'रंग में भंग' प्रकाशित हुई तो उसकी भूमिका में द्विवेदी जी ने लिखाः 'रही स्वयं कविता, सो उसके विषय में कुछ कहने का हमें अधिकार नहीं, इसलिए कि बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना को हम प्यार करते हैं, उसे स्नेहार्द दृष्टि से देखते हैं।'

मुंशी अजमेरी उनके बाल सखा थे। उनका भी गुप्त जी पर बहुत प्रभाव था। बार्हस्पत्य जी सरकारी महकमे में इंजीनियर थे और गुप्त जी की कविता के पारखियों में पहली पंक्ति में थे। 'साकेत' ग्रंथ लिखने का विचार गुप्त जी को द्विवेदी जी के सरस्वती में प्रकाशित एक लेख और बार्हस्पत्य जी के सुझावों से ही आया। इसे उन्होंने उदारता से स्वीकार भी किया है।

राय कृष्णदास जी से भी वे सलाह लिया करते थे तथा सन्दर्भों की जानकारी प्राप्त करते थे। कविता-कर्म में वे अथक परिश्रम करते थे। यह बात सीखने योग्य है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी वे पढ़े नहीं थे। इन भाषाओं के ग्रंथों को दूसरों से पढ़वाकर सुनते थे और इनका मर्म

ग्रहण करते थे। द्विवेदी की राय मानकर उन्होंने हाली द्वारा रचित 'मुसद्दस' पढ़ा और उससे प्रभावित होकर 'भारत–भारती' नाम के ग्रंथ की रचना की।

गुप्त जी का परिवार संगीत प्रेमी था। उनके घर में संगीत के सभी वाद्य थे। उनके पिता अपनी कविताओं को संगीतबद्ध कर मुंशी अजमेरी से गवाया करते थे। इन्हीं संस्कारों के कारण गुप्त जी ने गेय काव्य अधिक लिखा है। 'मातृभूमि' नाम की कविता का तो उनकी गेय कविताओं में अपूर्व स्थान है। उसके कुछ अंश अत्यंत लोकप्रिय हुये हैं। उदाहरण के लियेः–

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियां प्रेम–प्रवाह फूल तारे मंडल हैं,
बन्दी जन खग–वृन्द शेष–फन सिंहासन हैं।'

काव्य के संसार का अपार विस्तार है। कवि इस संसार को रचता है। जैसा उसकी रुचि होती है, वैसी वह रचना करता है। कवि के लक्षणों के संबंध में कहा गया हैः–

'अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति
यथास्मेय रोचते विश्वम तथेदं परिवर्तते।'

गुप्त जी का काव्य संसार प्राचीन भारत की गौरव गाथा में गर्व, वर्तमान पतनशीलता के प्रति, भेद तथा स्वर्णिम भविष्य के प्रति आस्था का संसार है। 'भारत–भारती' में उन्होंने लिखाः–

जिस लेखनी ने है लिखा उत्कर्ष भारतवर्ष का,
लिखने चली अब हाल वह उसके अमित अपकर्ष का
जो कोकिला नन्दन–विपिन में प्रेम से गाती रही,
दावाग्नि–दग्धारण्य में रोने चली है अब वही।'

देश में राष्ट्रीय जागृति के काम में 'भारत–भारती' का अमूल्य योगदान है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस पुस्तक के संबंध में जो लिखा है उसका एक अंश है उद्धृत करना चाहूंगाः– 'यह काव्य सोते हुओं को जगाने वाला है, भूले हुओं को ठीक राह पर लाने वाला है, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनाने वाला है, आत्मविस्मृतों को पूर्व स्मृति दिलाने वाला है। निरुत्साहियों को उत्साहित करने वाला है, उदासीनों के हृदय में उत्तेजना उत्पन्न करने वाला है। यह स्वदेश पर प्रेम उत्पन्न कर सकता है।'

द्विवेदी जी की बात सत्य हुई। सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ होने पर सत्याग्रही 'भारत–भारती' के अंश गाते जाते थे और सत्याग्रह करते थे। यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि अनेक अहिन्दी भाषियों ने इसे पढ़कर और सुनकर हिन्दी सीखी। १९८६ में गुप्त जी की राष्ट्रीय कविताओं के संग्रह 'राष्ट्रवाणी' का विमोचन करते समय माननीय श्री पी.वी. नरसिंह राव जी ने स्वीकार किया कि उन्होंने 'भारत–भारती' पढ़कर हिन्दी सीखी। श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने इस ग्रंथ का संपादन किया है। उन्हीं की एक पुस्तक में इस बात का जिक्र है।

गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे महान राष्ट्रभक्त उनके अनन्य मित्र थे। उनकी देशभक्ति की कवितायें विद्यार्थी जी के 'दैनिक प्रताप' में छपती थीं। जब गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से लौटे तो गुप्त जी ने प्रताप में 'अफ्रीका का प्रवासी भारतवासी' कविता लिखी। उन्होंने लिखाः-

'दीन हैं हम किन्तु रखते मान हैं,
भव्य भारतवर्ष की संतान हैं।'

जब गांधी जी का आंदोलन बल पकड़ गया तो उन्होंने लिखाः-

'अस्थिर किया टोप वालों को गांधी टोपी वालों ने।'

उनकी कविताओं का इतना प्रभाव था कि अंग्रेजी सरकार ने उन्हें १९४१ में कारावास की सजा दी।

मैथिलीशरण जी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल पक्षधर थे। स्वतंत्र भारत में जब वे राज्यसभा के सदस्य बने तब भी हिन्दी हित के लिये जुटे रहे। नागरी लिपि के भी वे सक्षम समर्थक थे। उन्होंने लिखा हैः-

'है एक लिपि विस्तार होना योग्य हिन्दुस्तान में-
अब आ गई यह बात सब विद्वज्जनों के ध्यान में।
है किन्तु इसके योग्य उत्तम कौन लिपि गुण आगरी
इस प्रश्न का उत्तर यथोचित है उजागर-'नागरी'।'

वे शोषितों के प्रति अपार सहानुभूति रखते थे। एक समय में भारत से फीजी, मौरिसस, वेस्टइंडीज आदि देशों में भारतीय मजदूर भेजे जाते थे। इनकी बड़ी दुर्दशा थी। इनके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था। इनकी दशा से द्रवित होकर गुप्त जी ने 'किसान' खंडकाव्य लिखा। यह अत्यंत करुण काव्य हैः-

'दैव! ला पटका कहां, हा! हम कहां, भारत कहां,
जन्म पाया था वहां, आए तथा मरने यहां।'

इनके इस काव्य ने देश में किसान आंदोलनों की भूमिका तैयार की। अंग्रेजों की फूट डालने की नीति को वे बुरा समझते थे। तभी उन्होंने कहाः-

'हिन्दू मुसलमान की प्रीति,
मेटे मातृभूमि की भीति।'

उन्होंने गुरुकुल नाम की पुस्तक लिखी जिसमें गुरु नानक से गुरु गोविन्द सिंह तक सिख गुरुओं का ओजपूर्ण वर्णन है।

नारी के प्रति करुणा की उन्होंने एक नवीन दृष्टि दी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'उनके काव्यों में नारी का रूप त्याग, तपस्या, दक्षता और वीरता के मोहक गुणों से परिपूर्ण है।' उन्होंने साकेत में उपेक्षित विरहणी उर्मिला के बारे में लिखा जिसका अन्य काव्यों में उल्लेख नहीं है। कैकेयी का भी उन्होंने उज्जवल पक्ष रखा है। गांधी जी ने भी 'साकेत'

ग्रंथ पढ़कर गुप्त जी से उसके बारे में पत्राचार किया था और अपने आश्रम में साकेत पढ़ाने के निर्देश भी दिये थे।

यशोधरा में भगवान बुद्ध की कथा लिखी गयी। तत्कालीन नारी की स्थिति का कितना मार्मिक चित्रण है:–

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंखों में है नीर और आंचल में पानी।'

गौतम जब यशोधरा को छोड़कर चले गये तब उन्होंने यशोधरा के मुंह से कहलवाया:–

'सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ बाधा ही पाते।'

आज राष्ट्रकवि की स्मृति में कवि दिवस मना रहे हैं। उत्तर प्रदेश एक समय में हिन्दी साहित्य के नवोत्थान का गढ़ रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण जी स्वयं, पंत, निराला, प्रसाद और महादेवी जैसे कवियों ने नयी भाषा की सृष्टि की और उसे गरिमा दी। ऐसी सृजनात्कता अब नहीं दिखाई देती। यह चिन्ता का विषय है कि, हिन्दी में सृजनधर्मिता में कमी क्यों हुई है।

आज अनेक प्रतिभावान लेखक निश्चिंत होकर लिख नहीं पाते। जीवन की आपाधापी और उहापोह में फंसकर उनकी सृजनशक्ति समाप्त हो जाती है। मेरा सुझाव है कि हिन्दी संस्थान कुछ फेलोशिप देने की योजना बनाये। वरिष्ठ साहित्यकारों द्वारा निष्पक्ष रूप से चुने गये प्रतिभावान लेखकों को दो वर्ष के लिये फेलोशिप दी जाये जिससे वे निश्चिंत होकर साहित्य साधना कर सकें। मैथिलीशरण जी के ही नाम पर फेलोशिप प्रारंभ की जा सकती है। गुप्त जी का सच्चा सम्मान यही होगा कि हिन्दी के प्रतिभावान लेखकों को बढ़ावा दिया जाये और वे हिन्दी की सेवा कर सकें।

●

सांस्कृतिक विरासत की रक्षा

उत्तर प्रदेश पुरातत्व और प्राचीन कला विधाओं की दृष्टि से बहुत ही सम्पन्न प्रदेश है, जिसका इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण है। भारतीय कला, संस्कृति और इतिहास का जहां तक संबंध है, संग्रहालयों का इस सिलसिले में काफी योगदान रहा है। पहले जन–सामान्य में संग्रहालय 'अजायबघर' या 'जादूघर' के नाम से जाने जाते थे, परन्तु अब उनका दायित्व एवं स्वरूप बहुत कुछ बदला है। संग्रहालय अपने विविध कार्यक्रमों के माध्यम से अब कला एवं संस्कृति संबंधी महत्वपूर्ण जानकारी देने का गुरुतर दायित्व निभा रहे हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि प्रदेश का यह सबसे बड़ा संग्रहालय इस दिशा में सराहनीय प्रयास कर रहा है इस संग्रहालय द्वारा प्राचीन कलाओं के विविध आयामों की जानकारी देने के लिये कला अभिरुचि पाठ्यक्रम आयोजित किया गया है। स्कूली बच्चों के लिये भी कई कार्यक्रम प्रतिवर्ष यहां कराये जाते हैं। मैं चाहूंगा कि प्रदेश के अन्य संग्रहालय भी इसका अनुकरण करें। देश एवं प्रदेश में स्थान–स्थान पर बिखरी हुई सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा एवं संरक्षा की आज सबसे ज्यादा जरूरत है। मैं मध्य प्रदेश की सम्पन्न संस्कृति से जुड़ा रहा हूं। संस्कृति की परिचायक वस्तुयें जैसे–अभिलेख, मुद्रायें, प्रतिमायें तथा वास्तुकला के नमूने पूरे मध्य प्रदेश में भरे पड़े हैं, जहां इन महत्वपूर्ण कलाकृतियों की सुरक्षा के लिये तीन चार दशक पहले मात्र गिनती के कुछ संग्रहालय थे, आज वहां मंडल स्तर पर और जिला स्तर के संग्रहालय विद्यमान हैं। वहां पुरातत्व सम्बन्धी सर्वेक्षण एवं उत्खनन भी हुये हैं। इसके लिये वहां संग्रहालय तथा पुरातत्व का एक विभाग भी है। मध्य प्रदेश की लोक कला, संस्कृति तथा परम्परागत अर्वाचीन कला को भी प्रोत्साहन दिया गया है। 'भारत भवन' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। संग्रहालय से जुड़े लोगों का यह दायित्व बनता है कि समाज में उसकी उपयोगिता स्थापित करें, लोकप्रियता बढ़ायें और अपनी संरक्षित सांस्कृतिक धरोहर के राष्ट्रीय महत्व को उजागर करें। जहां पुराने संग्रहालयों को समृद्ध और सक्रिय बनाने की आवश्यकता है, वहीं महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों तथा बड़े नगरों में नये संग्रहालय स्थापित करना भी जरूरी है। मैं कहना चाहूंगा कि जिस प्रकार विदेशों में संग्रहालय स्वायत्तशासी संस्था के रूप में लोकप्रिय हुये हैं और अनेक वैयक्तिक संस्थाओं द्वारा वहां महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया जा रहा है, उसी प्रकार यहां भी कुछ स्वैच्छिक एवं सामाजिक संस्थायें संग्रहालयों की अभिवृद्धि में सहायता प्रदान करने के लिये आगे आयें और इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभायें। कला अभिरुचि पाठ्यक्रम के प्रतिभागियों ने अपनी कला के प्रति निरन्तर अधिक रुचि प्रदर्शित की है। मैं चाहूंगा कि आप सभी इसी प्रकार कला एवं संस्कृति के संवर्द्धन में योगदान देते रहें।

●

हिन्दू-मुस्लिम एका के प्रतीक जोश मलिहाबादी

जोश मलिहाबादी केवल एक इंकलाबी शायर ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के वह बहादुर मुजाहिद थे, जिन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी हिन्दुस्तान की आजादी, हिन्दुस्तान की तरक्की और हिन्दुस्तान की शान को बनाये रखने के लिए वक्फ कर दी थी। इसी मलिहाबाद में ५ दिसम्बर, १८९८ में जन्में शब्बीर अहमद खां जोश मलिहाबादी एक खाते-पीते पठान खानदान से ताल्लुक रखते थे। इनके परदादा, जिन्होंने मलिहाबाद के कस्बे को खरीदकर इसे अपना वतन बनाया था, एक अच्छे शायद थे। इसके अलावा इनके दादा और पिता भी शायर थे।

जोश मलिहाबादी को अपने परिवार में शेर व शायरी का जो माहौल मिला, उससे उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था। इस प्रकार शायरी उन्हें विरासत में मिली और ९ वर्ष की आयु में ही वे शेर कहने लगे। १२ वर्ष की उम्र तक गजलगोई करते रहे और फिर नज्म कहने लगे। वे तरक्की पसन्द तहरीक से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अपनी शायरी के माध्यम से देशवासियों में मुल्क को आजाद कराने की जो तहरीक पैदा की, वह तारीख के पन्नों में हमेशा जगमगाता रहेगा।

जोश साहब ने अपनी इंकलाबी शायरी की शुरुआत उस जमाने में की जब हमारे मुल्क में अली सरदार जाफरी, फैज अहमद फैज, हसरत मोहानी, जफर अली खां, मौलाना मोहम्मद अली, कैफी आजमी और मजाज आदि की इंकलाबी शायरी से फिजां गूंज रही थी। उन्होंने अपनी शायरी के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन में जो अद्वितीय योगदान किया, उस पर जितना भी गर्व किया जाये कम है।

जोश साहब ने खुद एक शेर में कहा है कि शायरी उनका खानदानी फन है।

शायरी क्यों न रास आये मुझे यह मेरा फन खानदानी है।

पंडित नेहरू के जोश साहब बहुत अच्छे दोस्त थे तथा दोनों एक दूसरे के ख्यालात से काफी प्रभावित थे। यह दोनों भारत को हर हाल में आजाद देखना चाहते थे। इसी जमाने में जोश साहब के विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आया और वे तन-मन-धन से स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय हो गये और बड़ी बेबाकी के साथ अंग्रेजों की हर नापाक साजिश को नाकाम बनाने के लिए संघर्षरत हो गये। जोश साहब के जीवन का अब एक ही लक्ष्य था जैसे भी हो देशवासियों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जाये और उनमें आजादी की ललक पैदा की जाये। इस सिलसिले में उनका यह शेर काफी महत्व रखता है:-

काम है मेरा तगय्यूर नाम है मेरा शबाब।
नारा मेरा इंकिलाबो इंकिलाबों इंकिलाब।।

इसके बाद जोश मलिहाबादी शायर-ए-इंकलाब बनकर हिन्दुस्तान के कोने-कोने में लोकप्रिय हो गये।

भारत में जब साइमन कमीशन आया तो उन्होंने न केवल साइमन कमीशन वापस जाओ का नारा बुलन्द किया, बल्कि साइमन कमीशन के शीर्षक से एक नज्म भी कही-

कहीं है धूप से नादान बदतर
गुलामी की घटा का शामियाना।

हालांकि इनके कलाम में हिन्दुस्तान में आने वाले इन्किलाब की गूंज साफ सुनाई देने लगी थी। इस सिलसिले में यह शेर काफी मशहूर हैः-

क्या हिन्द काजिन्दां कांप रहा है गूंज रही है तकबीरें,
उकसाये हैं शायद कैदी कुछ और तोड़ रहे जंजीरें।

जोश साहब यह खूब समझते थे कि देशवासियों में अब जो क्रांति की ज्वाला धधक रही है, उससे एक जबर्दस्त इन्किलाब आने वाला है। उन्होंने देशवासियों का आह्वान करते हुए कहा थाः-

उठो, चौंको, बढ़ो, मुंह हाथ धो, आंखों को मल डालो,
हवाये इन्किलाब आने को है हिन्दोस्तां वालो।

इसी प्रकार एक दूसरे शेर में उन्होंने यह अगाही भी दी थी किः-

चौकिये जल्दी हवाये तुन्द व गरम आने को है
जर्रा-जर्रा आग में तबदील हो जाने को है।

जोश मलिहाबादी भारत के वह लोकप्रिय शायर थे, जिन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा से उर्दू शायरों की एक पूरी नस्ल को प्रभावित किया। जोश साहब ने लगभग एक लाख शेर कहे और शायरी की दुनिया में अपनी एक प्रतिष्ठित एवं विशिष्ट पहचान बनाई। जोश यद्यपि एक कामयाब नज्मगो शायर थे, लेकिन उन्होंने गजल के माध्यम से उर्दू शायरी को एक नया मोड़ दिया। सच तो यह है कि जोश की शायरी में हाफिज शीराजी, मीर, गालिब, नजीर, अनीस, मोमिन और इकबाल की छाप नजर आती है। जोश की शायरी की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वे जमाने के हालात और आम आदमी की जिन्दगी को पूरी ईमानदारी और सच्चाई के साथ पेश कर देते थे। जोश ने हुस्न और इश्क के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हुए यद्यपि गजल की रवायत से काम लिया है लेकिन कुछ नये तजुरबे भी किये हैं, जिससे उनकी शायरी का महत्व बढ़ गया। जोश मलिहाबादी शायरी की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे घटना को सही ढंग से चित्रित करते थे तथा घटना को इस प्रकार बयान करते थे, जिससे पाठक के सामने सही स्थिति आ जाती थी। उन्होंने कभी किसी घटना को गलत तरीके से प्रस्तुत नहीं किया।

जोश एक निर्भीक एवं प्रभावशाली पत्रकार भी थे तथा एक कुशल अनुवादक भी थे। वे अंग्रेजी गद्य एवं पद्य का अनुवाद करने में पूरी महारत रखते थे। उन्होंने सबसे पहले देहली से प्रकाशित उर्दू पत्रिका कलीम का वर्ष १९३५ से १९३९ तक सम्पादन किया। इसके बाद वे लखनऊ आ गये और मासिक नया अदब के प्रधान सम्पादक बने। आजादी के बाद वे फिर देहली पहुंचे और वहां वर्ष १९४८ में केन्द्रीय सरकार के प्रकाश प्रभाग से प्रकाशित उर्दू मासिक आज–कल के सम्पादक मुकर्रर हुए और सन् १९५५ तक इसके सम्पादक रहे। जोश साहब फिल्मी दुनिया और आल इंडिया रेडियो से भी कुछ दिन सम्बद्ध रहे। उनमें आत्म सम्मान कूट–कूट कर भरा हुआ था। उन्होंने यहां तक कहा कि जब हश्र यानी प्रलय होगी तो भी वे ईश्वर के सामने बादशाही शान से जाएंगे। अगर वहां आवभगत न होती तो लौट आयेंगे। उनका यह बड़ा मशहूर शेर हैः–

हश्र में भी खुस्खाना शान से जाएंगे हम,
जो अगर पुरसिश न होगी तो पलट आयेंगे हम।

जोश साहब एक बड़े शायर होने के अलावा बड़े अच्छे इंसान भी थे। इंसानियत, रवादारी, इंसान–दोस्ती और हकपरसती उनके जीवन का आदर्श था। गरीबों की मदद करना, दूसरों के काम आना और बेसहारा लोगों के दूःख दूर करना अपना धर्म समझते थे। लेकिन इसके साथ ही साथ वे बड़े आनबान और शान–शौकत के आदमी थे।

एक बार वे आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने गये। उनसे इंतजार करने को कहा गया कि अभी पंडित जी बहुत जरूरी काम में मशरूफ हैं, इसलिए अभी नहीं मिल पाएंगे। जोश साहब ज्यादा देर तक बैठकर इंतजार करना पसन्द न कर सके और वापस लौट आये। इसके कुछ दिनों के बाद नेहरू जी स्वयं जोश साहब से मिलने गये तो उन्होंने बड़ी निर्भीकता से नेहरू जी को बाहरी कमरे में बैठकर इंतजार करने को कहा। नेहरू जी के पास हमेशा समय का अभाव रहता था। वह भी वापस लौट गये। इसके बाद जोश साहब जब फिर नेहरू जी से मिलने गये तो उन्होंने जोश साहब को फौरन बुला लिया। इस पर जोश साहब ने मुलाकात के वक्त नेहरू जी से कहा कि अब मामला बराबर हो गया। ऐसी ही मुलाकात में मजा आता है। इसी प्रकार एक बार जोश साहब मौलाना अबुल कलाम आजाद से मिलने गये। इसे इत्तिफाक ही कहा जायेगा कि मौलाना आजाद उस वक्त एक बहुत ही जरूरी कार्य में मशरूफ थे। उनसे इंतजार की बात कही गई। उन्होंने १५ मिनट तक बड़ी बेसब्री से इंतजार किया और फिर उठकर वापस चल दिये। लेकिन जाते–जाते मौलाना आजाद के लिए एक पर्चा छोड़ गये, जिस पर यह शेर लिखा हुआ थाः–

नामुनासिब है खून खौलाना, फिर किसी और वक्त मौलाना।

मौलाना यह शेर पढ़ते ही अपने कमरे से बाहर आ गये और लपक कर जोश साहब से बड़ी गरमजोशी से मिले और उनसे माफी मांगी। जोश मलिहाबादी प्रेम और मानव–एकता तथा भाईचारे का जीता जागता नमूना थे। वे वसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श को अपने जीवन का लक्ष्य मानते थे और पूरी धरती को अपना आंगन समझते थे।

जोश साहब हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता पर हमेशा बल देते रहते थे और अपने इस दृढ़ संकल्प का भी बराबार ऐलान करते रहे किः–

बलवते मेरे बढ़ेंगे नाज फरमाते हुये

फिरकाबन्दी का सरे–नापाक ठुकराते हुये।

जोश साहब पक्के देश भक्त थे और हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि मानते थे। अपने वतन की चाहत का अंदाजा उनके एक शेर की इस पंक्ति से लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने यह इच्छा व्यक्त की थी कि दुनिया के किसी भी कोने में मृत्यु हो तो 'दफन करना अपने शायर को वतन की खाक में।' लेकिन इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि पंडित नेहरू द्वारा सखती से मना करने के बावजूद उन्हें पाकिस्तान जाना पड़ा और वह आखिरी सांस तक हिन्दुस्तान न आ सके। जबकि उनका दिल पाकिस्तान में रहने के बावजूद हिन्दुस्तान, खासतौर से मलिहाबाद में लगा रहा। अपनी आत्मकथा 'यादों की बारात' में उन्होंने अपने पाकिस्तान जाने का जिक्र किया है। उनके बहुत पुराने दोस्त अबू तालिब नकवी कराची के चीफ कमिश्नर थे। वह हर वक्त उन्हें पाकिस्तान में बस जाने को कहते थे। जब उन्होंने बहुत ज़ोर डाला तो जोश साहब ने कहाः 'नकवी साहब, जब तक पंडित नेहरू जिन्दा हैं तब तक मैं पाकिस्तान कैसे जा सकता हूं।' नकवी साहब ने पूछाः 'और नेहरू जी के बाद क्या होगा'। जोश साहब बोलेः 'खुदा न करे, मैं उनके बाद जिन्दा रहूं।' ऐसी उनकी मोहब्बत थी पंडित जी के साथ। बाद में उनकी बहुत ब्रेन वाशिंग की गई और सिनेमा, मकान और बगीचे के लिऐ प्लाट देने की बात कही गई। किसी कमजोर लमहे में जोश साहब पाकिस्तान चले गये। पर वहां उनके साथ बुरा सुलूक किया गया। उन्होंने खुद ही लिखा है कि 'मेरे खिलाफ वहां ऐलाने जंग फरमा दिया गया।' वहां न तो उन्हें मुशायरों में जाने को मिला और न ही नौकरी मिली। उन्हें साहित्यकार सलाहकार बनाया गया था। वह पद बंबई के किसी अखबार में इंटरव्यू देने की वजह से छीन लिया गया। उनके इंतकाल के बाद उन पर इस्लाम की दुश्मनी और पाकिस्तान की दुश्मनी का इलजाम लगाया गया। उनकी आत्मकथा 'यादों की बारात' में हिन्दुस्तान और यहां के नेताओं की तारीफ थी। इसलिए इस किताब को जब्त कर लिया गया। इसीलिए जोश साहब कहते थे कि अपने मुल्क को छोड़ना 'मेरा ऐसा जुर्म था कि इसे मुआफ ही नहीं किया जा सकता।'

मैं इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि जोश मलिहाबादी ने गद्य एवं पद्य के माध्यम से उर्दू साहित्य की जो अविस्मरणीय सेवा की है, उससे उभरते हुए नौजवान शायरों को तहरीक हासिल करनी चाहिए और अपने कलाम से देशवासियों में प्रेम एकता, शांति, सद्भाव और मानवता की भावना जागृत करने का प्रयास करते रहना चाहिए। मैं समझता हूं कि यही जोश साहब को सही और सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सोच और नजरिये में तब्दीली

सर्वविदित है कि भारत सरकार द्वारा हाल ही में आर्थिक नीति में जो थोड़ी–बहुत रचनात्मक तब्दीली की गयी है, उससे हमारी अर्थव्यवस्था किसी हद तक सुदृढ़ हुई है। अब हम एक नियंत्रित अर्थव्यवस्था से हट कर खुले बाजार की अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं इस अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के व्यवसायियों को अपेक्षाकृत अधिक प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऐसे क्षेत्रों में भी उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इधर व्यापार, उद्योग, विनिमय तथा अन्य आर्थिक एवं वित्तीय क्षेत्रों में सुधारात्मक कदम उठाये गये हैं। इससे सिर्फ एक ही बात का पता चलता है कि हम नई दिशा में अग्रसर हैं। आज भारतीय अर्थव्यवस्था का संसार की अर्थव्यवस्था से सीधा संबंध कायम हुआ है।

इस सम्बन्ध में भारत के प्रधानमंत्री, श्री पी.वी. नरसिंह राव ने दावोस (स्विटजरलैंड) में इस वर्ष पहली फरवरी को आयोजित विश्व आर्थिक मंच की बैठक को संबोधित करते हुए बिल्कुल सही इशारा किया था कि 'प्रत्येक समाज को अपना ऐसा मध्य मार्ग स्वयं खोजना होगा जो उसकी प्रकृति और परिस्थितियों के अनुकूल हो। यह मार्ग नए परिवर्तनों की हवा में खोजना होगा, तभी वह सफल होगा।... लगभग सारे विश्व में बाजार की शक्तियों के मनपसंद स्वरूप और व्यक्तिगत पहल को प्राथमिकता देने की बात स्वीकार की जाने लगी है। व्यापार में उदारीकरण तथा पूंजी, प्रौद्योगिकी और उद्यमशीलता को अधिक आजादी के साथ राष्ट्रीय सीमाओं के पार जाने की छूट देने की नीतियों ने आर्थिक विकास को बहुत बढ़ावा दिया है। विशेष रूप से संचार की नई प्रौद्योगिकियों ने राष्ट्रीय सीमाओं की सार्थकता को धुंधला कर दिया है। इन्होंने सार्वभौमिक एकता को प्रबल रूप से प्रोत्साहित किया है।'

उन्होंने अपने इस भाषण के दौरान यह आशा भी व्यक्त की थी कि 'औषधि, जैव–प्रौद्योगिकी, परमाणु विज्ञान और नियत्रण एवं संचार प्रणाली–विज्ञान में प्रगति मानव–जीवन में इतना बदलाव ले आयेगी कि उसे पहचाना भी नहीं जा सकेगा। बस शर्त यह है कि नए प्रोत्साहन की लहर सहनशीलता के बिन्दु पर आकर रुक न जाए।' संसार की अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों से हम हाथ पर हाथ रखकर नहीं बैठ सकते और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उद्योग, विनिमय और बैंकिंग आदि क्षेत्रों में जो कुछ भी हो रहा है, उसे हम नजरंदाज भी नहीं कर सकते। भारतीय बाजार का अब जबकि अन्तरराष्ट्रीयकरण हो चुका है तथा यहां खुले बाजार की नीति अपनायी जा रही है, प्रतिस्पर्धा बढ़ चुकी है। कंमनियों द्वारा अधिक मुनाफा–प्रतिशत का फार्मूला छोड़कर 'अधिक विक्रय– अधिक मुनाफा' का मूल मंत्र अपनाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में कम से कम लागत पर बेहतर से बेहतर सामान तैयार करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रबंधन को भारतीय उद्योग की नैया के मांझी की संज्ञा दी जा सकती है।

यह वर्ष १९९१ से पूर्व की बात है, जब मुद्रास्फीति अपनी चरम सीमा पर थी और भुगतान संतुलन बिगड़ चुका था, उस समय भारत द्वारा महत्वपूर्ण आर्थिक कार्यक्रमों एवं सुधारों को अपनाया गया। भारतीय व्यापार नीति को उदारीकृत किया गया। रुपये का अवमूल्यन किया गया। सब्सिडीज को कम किया गया तथा कंट्रोल व्यवस्था को समाप्त कर खुले बाजार की नीति अपनायी गयी। इन नीतियों के अब तक अच्छे परिणाम सामने आ रहे हैं। रुपये के अन्तरराष्ट्रीय बाजार में सुदृढ़ता दिखाई है तथा डालर की तुलना में इसके मूल्य में स्थिरता आई है। वित्तीय क्षेत्र में एक बड़े शेयर घोटाले के बावजूद बाजार में मजबूती आई है तथा शेरों के दाम पुनः बढ़ रहे हैं। विदेशी बाजार में भी भारत की साख बढ़ी है और विदेशी कंपनियों और भारतीय प्रवासियों ने भारत में पूंजी निवेश में बहुत अधिक रुचि दिखाई है, जिसके फलस्वरूप अब तक लगभग ५० करोड़ डालर से अधिक का निवेश भारत में हो चुका है। भारत में मात्र विदेशी पूंजी ही नहीं है, वरन साथ ही साथ विदेशी प्रौद्योगिकी भी आई है। यह प्रौद्योगिकी हम से कहीं बेहतर है। इस समय की स्थिति में हमें उनकी पूंजी और उनकी प्रौद्योगिकी के मामले में विदेशी कंपनियों का मुकाबला संयम से करना चाहिए। सिर्फ 'कूप मंडूक' बने रहना ठीक नहीं है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सन्निकटता से यद्यपि अनेक लाभ प्राप्त होंगे, किन्तु इसके साथ ही अनेक प्रकार की चुनौतियां भी हमारे सामने आएंगी। सबसे महत्वपूर्ण चुनौती यह होगी कि इस परिवर्तन से सभी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। व्यापारिक संस्थाओं को अपने माल को बाजार में बेचने के लिए स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। इसके अलावा व्यापार के प्रबंधन, परम्परागत तरीकों, विधियों और नीतियों को संयम के साथ सहन कर पाना अब मुश्किल होगा। इसके लिये अपनी कार्य-संस्कृति में बेहतर से बेहतर बदलाव लाना होगा। यह सभी ऐसी चुनौतियां हैं, जिनका राष्ट्रहित में पूरी तत्परता, सहनशीलता, सूझबूझ और कार्य-कुशलता से सामाना करना होगा। तभी उदारीकरण का भारतीय समाज पूरा-पूरा लाभ उठा सकेगा।

इस संदर्भ में सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम अपनी सोच और अपने नजरिये में तब्दीली लाएं तथा हमें इस तथ्य को अब स्वीकार कर लेना चाहिए कि कारोबार के बारे में हानि-लाभ का फैसला बाजार में ही होगा। इसके लिए जरूरतं इस बात की है कि हम अपने संसाधनों से प्रौद्योगिकी का विकास करें तथा कम से कम लागत में बेहतर से बेहतर सामान तैयार करें। ऐसे प्रतिस्पर्धापूर्ण वातावरण में 'प्रबंध-तंत्र' पर गुरुतर दायित्व है, जिसे बहुत जल्द भारतीय उद्योगपतियों को इस प्रकार मार्गदर्शन देना है कि वह अपने उत्पादों की लागत को कैसे नियंत्रित रखें, उसे कम करें तथा विदेशी कम्पनियों का सामना करने के लिए भारतीय उद्योग को सक्षम बना सकें।

●

समाजवादी चिन्तक डा. लोहिया

डा. राममनोहर लोहिया एक जनप्रिय नेता, कर्मठ राजनीतिज्ञ और कुशल विचारक थे। उनके भाषणों, वक्तव्यों, लेखों, जीवन-दर्शन तथा कार्य-कलापों आदि में समाजवादी विचारधार साफ नजर आती है। लोहिया जी सही मायने में महान चिन्तक थे, जो भारत को हर हाल में संसार का एक आदर्श देश बनाना चाहते थे। वे समाज में समता और समानता के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे और कभी किसी से अपने सिद्धांतों से कोई समझौता नहीं किया। कष्ट झेले, मुसीबतें उठायीं लेकिन कभी हार नहीं मानी ओर हमेशा हिम्मत के साथ आगे बढ़ते रहे तथा दूसरों को भी जनहित में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करते रहे।

डा. राममनोहर लोहिया ने समाज से ऊंच-नीच, छुआछूत व अमीरी-गरीबी का भेदभाव समाप्त करने और धर्म, जाति, सम्प्रदाय, भाषा तथा क्षेत्रवाद से संबंधित विवादों को खत्म करने के लिए जो शानदार योगदान किया है, उसे हमेशा याद रखा जायेगा। वह बराबर कहते रहते थे कि पिछड़े वर्ग के लोगों, आदिवासियों, महिलाओं तथा अविकसित अल्पसंख्यकों को जब विशेष अवसर प्रदान किये जायेंगे, तभी वे तरक्की की बुलंदियों पर पहुंच पाएंगे। इसके लिए वह अपने पांच प्रमुख लक्ष्यों अर्थात समता, प्रजातंत्र, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण और समाजवाद पर आधारित सिद्धांतों को केवल भारत के लिए ही नहीं , बल्कि पूरे विश्व के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण समझते थे। उनका मानना था कि इन्हीं सिद्धांतों पर चलकर ही मानव जाति को निजात मिलेगी।

महात्मा गांधी से उनका संबंध जैसे जन्मजात था। जितना स्नेह और आदर उनके मन में गांधी जी के लिए था उतनी ही प्रचुर मात्रा में गांधी जी ने उन्हें स्नेह दिया। नौ-दस साल की उम्र में जब वे गांधी जी से मिले तो न जाने किसी अंतःप्रेरणा से उन्होंने गांधी जी के पैर छुए। ऐसा वे किसी के लिए नहीं करते थे। उनके नेहरू जी, सरदार पटेल और जयप्रकाश नारायण जी से वैचारिक मतभेद थे। गांधी जी ने इनमें हमेशा लोहिया ज़ी का समर्थन किया। जब उन्होंने गोवा में आंदोलन शुरू किया तो जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल इसके खिलाफ थे। पर गांधी जी ने इसे ठीक माना। भारत के विभाजन के समय गांधी जी और लोहिया जी ही इसके कट्टर विरोधी थे। नोआखाली में केवल लोहिया ही महात्मा जी के साथ थे।

१९४० में जब लोहिया जेल गये तो महात्मा जी ने कहाः 'जब तक डा. राममनोहर लोहिया जेल में है तब तक मैं खामोश नहीं बैठ सकता। उनसे ज्यादा बहादुर और सरल आदमी मालूम नहीं। उन्होंने हिंसा का प्रचार नहीं किया। जो कुछ किया है उससे उनका सम्मान और अधिक बढ़ता है।' १९३९ में त्रिपुरा कांग्रेस में उन्होंने गांधी जी का साथ दिया। वे कांग्रेस में समाजवादी थे। पर सुभाष बोस का साथ उन्होंने नहीं दिया। त्रिपुरा में ही पंत प्रस्ताव का

उन्होंने नेताजी के विरुद्ध समर्थन किया। १९४६ में जब वे दूसरी बार गोवा जा रहे थे तब गांधी जी के ही कहने पर नहीं गये– केवल संदेश भेज दिया।

३० जनवरी १९४८ को गांधी जी ने उन्हें बुलाया था और कहा था कि आज पेट भर बातें करेंगे। जब लोहिया जी बिरला हाउस पहुंचे गांधी जी की हत्या हो चुकी थी। स्तब्ध लोहिया इतना ही कह पाये– 'क्यों आपने मेरे साथ और देश के साथ ऐसी दगाबाजी की? क्यों आप इतनी जल्दी चले गये?'

पर उनका यह लगाव रूमानियत और अंधभक्ति पर आधारित नहीं था। यह प्रखर बौद्धिक विश्लेषण के आधार पर था। १९३२ में जर्मनी में पी.एच.डी. भी उन्होंने 'नमक और सत्याग्रह' विषय पर की थी। 'मार्क्स, गांधी और समाजवाद' में उन्होंने गांधी को तर्क की कसौटी पर कसा और खरा पाया। वे अक्सर कहते थे कि बीसवीं सदी में दो ही चीजें मौलिक हुई हैं– गांधी और अणु बम।

जैसा मैंने कहा वे विद्रोही थे पर अनुशासनबद्ध। जब वे लोकसभा में चुने गये तब लोगों को भय था कि वे हंगामा करेंगे और कार्रवाई में व्यवधान करेंगे। पर उन्होंने लोकसभा के नियमों को समझा। उन्हीं के अंदर काम कर तहलका मचा दिया। भारत में २७ करोड़ लोगों को रोजाना आमदनी तीन आना प्रतिदिन वाला उनका पैना भाषण तो आज भी लोग याद करते हैं।

किसी भी परिस्थिति में हों और दुनिया में कहीं भी हों उन्होंने साहसपूर्वक मक्कारी और अन्याय का प्रतिकार किया। १९३० में जब उन्हें पता चला कि जिनेवा में लीग आफ नेशन्स की बैठक हो रही है और उसमें भारत के प्रतिनिधि के रूप में कई राजा भाग लेंगे, वे नाटक कर सफलतापूर्वक उस हाल में घुस गये जहां बैठक हो रही थी। जब राजा बीकानेर उठकर अंग्रेजों के गुण गाने लगे तो दर्शक दीर्घा से लोहिया जी ने सीटियां बजाकर सभा को भंग कर दिया। दूसरे दिन वहीं इस बारे में पर्चा छपवाकर बंटवाया। १९६४ में वे अमेरिका के एक होटल में बैठे थे। वहां उन्होंने कुछ श्वेतों को एक अश्वेत महिला से अभद्रता करते देखा। वे उनसे भिड़ गये।

१९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन के समय उन्होंने पैम्फ्लेट निकाला 'योद्धाओं आगे बढ़ो' पर निश्चय किया कि पकड़े नहीं जाएंगे। बंबई, कलकत्ता और नेपाल से गुप्त रेडियो स्टेशन चलाये और खूब प्रसारण किया। नेपाल में जयप्रकाश नारायण के आजाद दस्ते से जुड़े। वहां पुलिस घेरे से कैसे निकले यह किसी रोमांचक उपन्यास से कम नहीं है। आखिर २० मई १९४४ को पकड़े गये। लाहौर किले में उनहें घोर यातनाओं का सामना करना पड़ा। १० दिन तक उन्हें सोने नहीं दिया गया। पर वे टूटे नहीं। अभेद्य जेल से उन्होंने राजनैतिक विज्ञान के प्रसिद्ध प्रोफेसर हैरोल्ड लास्की को पत्र लिखा। जेल से छूट कर इतना थक गये थे कि आराम करने गोवा गये। पर वहां अन्याय देखकर फिर आंदोलन में जुट गये। गोवा में लोक गीतों में उनका नाम जुड़ गया:

पहिली माझी ओवी पहिले माझ फूल
भक्ती ने अर्पिन लोहिया ना।।

लोहिया जी की विचारधारा के केन्द्र में समता थी। समाजवाद को उन्होंने समता और समृद्धि के रूप में परिभाषित किया था। इसीलिए वे जाति प्रथा के खिलाफ लड़े, नारी समानता के लिए उन्होंने आवाज उठाई और आर्थिक समता के लिए आह्वान किया। गांवों में उन्होंने खेतिहर मजदूरों और भूमिहीनों के उत्थान का सिद्धांत दिया। एक बार उन्होंने कहा थाः 'धर्म का अर्थ सबके लिए व्यापक होना चाहिए– और वह है दरिद्रनारायण वाला जो सब लोगों के हित का हो। इसीलिए मैं सोचता हूं गांधी जी ने भी धर्म या ईश्वर को या सत्य को दरिद्रनारायण में देखा था और विशेषकर दरिद्रनारायण की रोटी में।'

डा. राममनोहर लोहिया ने समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा सामाजिक बराबरी कायम करने के लिए सात क्रांतियों का एक आदर्श सिद्धांत प्रस्तुत किया। समाजवाद क्या है? इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि 'समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम है बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीची उतरो, आर्थिक बराबरी, सामाजिक बराबरी, धार्मिक बराबरी। तब उसके बाद आयेगी समता, सम्पूर्ण समता और संभव समता। उन्हें समाजवाद की स्थापना पर इतना ज्यादा पक्का यकीन था कि वह यहां तक कहते रहते थे कि 'इंसान जिंदा रहेगा और आखिरकार जीत समाजवाद की ही होगी।'

डा. लोहिया के समता और समानता पर आधारित एक आदर्श समाज के निर्माण का जो सपना देखा था, उसे साकार करने में कोई कसर उठा न रखी जाए। यही डा. लोहिया को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

●

हिन्दी भाषा मानवता का माध्यम

हिन्दी वस्तुतः एक ऐसी लोकप्रिय भाषा है, जिसे राष्ट्रभाषा और राजभाषा का गौरव भी प्राप्त है। भारत में समस्त देशवासी, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, वर्ग अथवा क्षेत्र के हों– सभी हिन्दी को समझते, लिखते, पढ़ते और बोलते हैं। हिन्दी हमारे देश की वह सशक्त और समृद्ध भाषा है, जिसके विकास में साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों, न्यायमूर्तियों और अधिवक्ताओं का सक्रिय योगदान रहा है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिन्दी भाषा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए देशवासियों से कहा था कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाया जाए। क्योंकि एक प्रांत का दूसरे प्रांत से सम्बन्ध जोड़ने के लिए एक सर्वमान्य भाषा की आवश्यकता है। ऐसी भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही हो सकती है।

आजादी के बाद १४ सितम्बर, १९४९ को संविधन सभा में हिन्दी को राजभाषा बनाने का निर्णय लिया गया और फिर भारतीय संविधान में हिन्दी के बारे में यह उल्लेख किया गया कि 'संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी।'

भारत में उत्तर प्रदेश ही वह पहला प्रदेश है, जिसने आजादी के बाद अक्टूबर, १९४७ में सर्वप्रथम भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३४५ के अधीन उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम, १९५१ पारित करके देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को इस प्रदेश में विधितः राजभाषा का दर्जा प्रदान किया। इसके उपरान्त शासन द्वारा शासकीय कार्यों में 'हिन्दी' इस्तेमाल करने के लिए समस्त राजकीय काम–काज में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी के प्रयोग को २६ जनवरी, १९६८ से अनिवार्य घोषित कर दिया गया।

सच तो यह है कि हिन्दी भाषा मानव को मानव से जोड़ने का एक ताकतवर माध्यम है और यह मन–मानस की आत्मा से जुड़ी हुई है। हिन्दी भारत की एक अत्यंत सरल एवं सरस भाषा है, जिसे लेखने और बोलने में कोई कठिनाई नहीं होती। भारत की अधिकांश भाषाएं देववाणी संस्कृत से ही जन्मी हैं, किन्तु इनमें हिन्दी सभी भारतीय भाषाओं की तुलना में संस्कृत से बहुत निकट है। हिन्दी भाषा दो भागों में विभाजित की जा सकती है। एक वह हिन्दी, जिसमें आम बोल–चाल के शब्द होते हैं और साधारण से साधारण व्यक्ति, चाहे वह पढ़ा–लिखा हो अथवा न हो, समझ सकता है। इसके विपरीत दूसरी साहित्यिक भाषा होती है, जिसमें संस्कृत शब्दों का अधिकांश प्रयोग होता है, जिससे यह इतनी दुरूह और कठिन बन जाती है कि जन–साधारण समझ नहीं पाता। इसलिए आज सबसे बड़ी जरूरत इस बात की है कि हिन्दी को संस्कृतनिष्ठ भाषा बनाने के बजाए जन भाषा के रूप में विकसित करने पर विशेष ध्यान दिया जाए। हिन्दी भाषा देश की २० से २५ करोड़ जनता की मातृभाषा है। इसे लगभग ६५ करोड़ व्यक्ति समझ सकते हैं। भारत के लगभग सभी विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। केवल इतना ही नहीं, आज

विश्व के १२० से अधिक विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त दो सौ से अधिक स्कूलों और कालेजों में हिन्दी का पठन–पाठन एवं शोध कार्य चल रहा है।

मेरा यह मानना है कि हर वर्ष हिन्दी दिवस मना लेना ही काफी नहीं है, बल्कि जरूरत इस बात की है कि हम हिन्दी को अपनी बातचीत का माध्यम बनाएं और सभी सरकारी और गैर–सरकारी काम हिन्दी में ही करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दें। हमें आजाद हुए ४७ वर्षों का समय व्यतीत हो चुका है। हमने सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की है और संसार के विकसित राष्ट्रों की श्रृंखला में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने के लिए पूरी शक्ति से संघर्षरत हैं, किन्तु इसके ठीक विपरीत यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि हमारी अंग्रेजियत की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है। अंग्रेजी बोलकर वर्चस्व कायम करने और अहम का शिकार होने की दुर्भावना का सामाजिक तिरस्कार होना चाहिए। तभी गांधी जी की आकांक्षाओं के अनुरूप हिन्दी समस्त भारत की सर्वमान्य भाषा बन सकेगी। इसके साथ ही इस बात का भी हमें ध्यान रखना होगा कि हिन्दी को किसी व्यक्ति पर थोपने की कोशिश न की जाए और न ही हिन्दी भाषियों को अपने मन में हिन्दी के प्रति अहम रखना चाहिए। भारत के राष्ट्रपति, डा. शंकरदयाल शर्मा ने गत १४ सितम्बर को हिन्दी दिवस के अवसर पर राष्ट्रपति भवन में हिन्दी सेवी विद्वान सम्मान समारोह को संबोधिक करते हुए सचेत किया था कि 'समन्वय की शक्ति हिन्दी भाषा की बहुत बड़ी शक्ति है। इस बात को अच्छी तरह से याद रखा जाना चाहिए। हिन्दी भाषा को राजभाषा होने के नाते शीर्ष भाषा होने का अहम नहीं पालना है।'

हिन्दी अथवा किसी अन्य भाषाओं द्वारा किसी भाषा को दबाना कोई अच्छी बात नहीं है। भाषाएं एक दूसरे की पूरक होती हैं और समृद्धि में काफी सहायक सिद्ध होती हैं। यह वह तथ्य है जिसकी ओर आधुनिक भारत के निर्माता, पं. जवाहरलाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि 'भारतीय भाषाओं के पारस्परिक संपर्क को बढ़ाना होगा क्योंकि भाषा दूसरी भाषाओं से ही समृद्ध होती है। एक भाषा दूसरी भाषा द्वारा दबाई या कुचली जाए, यह सही नहीं है।' यह प्रसन्नता की बात है कि विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में हिन्दी के इस्तेमाल को बढ़ावा दिया जा रहा है। हमारे देश में न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों ने अपने निर्णय हिन्दी में देकर हिन्दी जगत में एक इतिहास बनाया है। यह गर्व की बात है कि हमारे अधिवक्तागण भी इस संबंध में किसी से पीछे नहीं हैं। वे भी अदालत में हिन्दी में बहस करने को प्राथमिकता दे रहे हैं। मुझे खुशी है कि हिन्दी विधि प्रतिष्ठान हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के साथ ही अदालतों में हिन्दी के अधिक से अधिक प्रयोग के लिए निःस्वार्थ भाव से सचेष्ट है, जिससे अदालतों में हिन्दी में निर्णय देने और बहस करने का एक अच्छा माहौल बना है। इसके लिए न्यायमूर्ति श्री सैयद हैदर अब्बास रजा एवं उनके सहयोगी बधाई के पात्र हैं।

●

नैतिकता से राष्ट्रीय चरित्र निर्माण

यह ऐतिहासिक नगर जौनपुर पाषाण युग से ही अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसी धरती पर आदिकाल में जमदग्नि, परशुराम, मार्कण्डेय, ऋषि देवल, महर्षि दुर्वासा और भृगु के द्वारा उच्चरित ऋचाओं से पूरा आर्यावर्त अभिषिक्त हुआ था। गार्गी, मैत्रेयी और लापामुद्रा की शांतिकामी सूक्तियों, महावीर और गौतम के सत्य–अहिंसा तथा अपरिग्रह के संदेशों ने यहीं सार्थकता पायी थी। यहीं से खड़े होकर ऋषियों ने 'जननी जन्मभूमिश्चय स्वर्गादपि गरीयसी' का उद्‌घोष किया था और जम्बू दीपे, आर्यावर्ते, भारत खंडे के अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा का संकल्प लेकर महान स्कन्धगुप्त ने हूणों से लोहा लिया था। यही वह क्षेत्र है जहां से अशोक, श्रीहर्ष व कनिष्क के धर्म प्रचारकों ने जावा, सुमात्रा, बोनिया, अंगकोरवाट, चीन, जापान तथा सुदूर मध्येशिया में पहुंचकर सर्वे भवन्तु सुखिनः तथा योग क्षेमस ब्रहाम्यहम का संदेश प्रसारित किया था। पूर्वांचल का मध्यकालीन इतिहास यहां के क्षत्रियों, पठानों की शौर्य गाथाओं से भरा पड़ा है। राजपूत रणबांकुरों से लेकर शेरशाह सूरी का पराक्रम यहां उपजा, पनपा तथा परवान चढ़ा था। यह नगर मिलीजुली हिन्दू मुस्लिम स्थापत्य कला के लिए काफी प्रसिद्ध रहा है। यह सूफियों, सन्तों, साधकों की पुण्य भूमि है। स्वाधीनता यज्ञ में दी गयी असंख्य आहुतियों से पवित्र इस धरती की माटी माथे चढ़ाने लायक है।

पूर्वांचल विश्वविद्यालय के कुलपति, सम्बद्ध महाविद्यालय के सभी प्राचार्य, आचार्य–गण और छात्र एवं छात्राएं इस क्षेत्र की गौरवशाली सांस्कृतिक धरोहर और आदर्श परम्पराओं के वाहक हैं। यह महान थाती आप सबकी अपनी ही विरासत है, जिसकी संरक्षा के साथ ही इसके उन्नयन के लिए सतत प्रयासरत रहना आपका गुरुतर दायित्व भी है। उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल के कुल ९५ महाविद्यालयों का संकुल यह पूर्वांचल विश्वविद्यालय वस्तुतः जौनपुर के अलावा गाजीपुर, मऊ, आजमगढ़, वाराणसी, भदोही, इलाहाबाद और मिर्जापुर के विशाल भू–भाग का प्रतिनिधित्व करता है।

आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारी युवा पीढ़ी महानता के उच्चतम आदर्शों का वरण करे, जिसके लिए उन्हें अपने मन में सत्य, त्याग, दया, क्षमा, प्रेम और सहिष्णुता के लिए दृढ़ संकल्प लेना होगा। इसके लिए देश के महापुरुषों के उच्च आदर्शों का अनुसरण करना होगा तथा सदाचरण और सद–व्यवहार को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी। कहा गया है कि चरित्र ही नियति है। ज्ञान, विज्ञान और प्रज्ञान से युक्त चरित्रवान व्यक्तियों की आज देश को आवश्यकता है। हमारे देश के मनीषियों ने भारतीय जीवन–दर्शन में ज्ञान और विज्ञान से ऊपर प्रज्ञान को महत्व दिया है। इसलिए देश में ऐसी शिक्षा को

बढ़ावा देना होगा, जिससे देश को बड़ी संख्या में आदर्शवान और प्रतिभावान नागरिक मिल सकें।

हमें सतत प्रयास करना चाहिए कि शिक्षा की गुणवत्ता बढ़े। शिक्षा उपयोगी हो और रोजगार मूलक हो। हर स्तर पर शिक्षा में श्रेष्ठता के सिद्धांत से समझौता न हो। शिक्षा राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करे। राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास ही आज देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। हमारा अहम देश के ऊपर हो गया है। हमारे अधिकार हमारे कर्तव्यों से अधिक प्रमुख हो गये हैं। इसलिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुन्नार मिर्डल ने १९६३ में लिखी अपनी चर्चित पुस्तक The Asian Drama में भारत को साफ्ट स्टेट कहा था। जान एफ केनेडी ने अमेरिका के राष्ट्रपति पद के शपथ ग्रहण समारोह के अवसर पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहा थाः–

Ask not what your Nation can do for you,
Ask what you can do for your Nation.

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण ध्येय मानव को विवेकशील बनाना है। क्योंकि विवेक–रहित ज्ञान निरर्थक होता है। आज देश जिन नाजुक हालात से गुजर रहा है उसका प्रमुख कारण व्यक्तिगत एवं सामुदायिक विवेकहीनता ही है। यह इस युग का कटु सत्य है कि शिक्षा प्रतिभाशाली और विवेकशील नागरिक तैयार करने में सफल नहीं हो पा रही है। इसलिए शिक्षा में गुणात्म्क सुधार नितांत आवश्यक हो गया है।

भारतीय समाज में किसी भी व्यक्ति का अपने आप में कोई पृथक अस्तित्व नहीं है। राष्ट्र वस्तुतः एक समुद्र है, जिसमें व्यक्ति मात्र एक बूंद की हैसियत रखता है। इसलिए समस्त देशवासियों को जनहित और राष्ट्रहित को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। हमारे देश में जब तक व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्रहित को वरीयता नहीं दी जायेगी, तब तक राष्ट्र तीव्र गति से प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेगा। अतः प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तर पर ऐसी आदर्श शिक्षा का बंदोबस्त किया जाना चाहिए जो देशवासियों, खासतौर से युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता और भारतीयता की भावना जागृत कर सके।

कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता का हिन्दी अनुवाद उद्धृत-करना चाहूंगा–

जिस वातावरण में हृदय भय–शून्य हो
जहां स्वाभिमान से उन्नत ललाट हो
जहां ज्ञान प्राप्ति के मार्ग उन्मुक्त हों
जहां संकुचित दीवारों से संसार खंडों में न बंटा हो
जहां शब्द सत्य की गहराइयों से निकलते हों
जहां श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए अनथक
पुरुषार्थ भुजाओं को बढ़ाता हो
जहां तर्क की निर्मल धारा का मार्ग

मृत रूढ़ि की मरु-भूमि में खो न गया हो
जहां तेरे द्वारा मन निरंतर विकसित विचारों
और कर्मों में लाया जाता हो
स्वतंत्रता में उस स्वर्ग में
हे परमात्मा मेरा देश जागृत हो।

आज भारत के सामने अनेक गंभीर चुनौतियां हैं। धर्म, जाति, क्षेत्र और भाषा की संकीर्णता के कारण राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिक सद्भाव को नुकसान पहुंच रहा है। परस्पर विरोधी विचारधाराओं को बढ़ावा मिलने से समाज में अशांति, अस्थिरता और असंतोष की स्थिति उत्पन्न होती है तथा अराजक शक्तियों और समाज विरोधी तत्वों को युवा पीढ़ी, विशेषकर छात्र वर्ग को पथभ्रमित करने का मौका मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि नई पीढ़ी कर्म क्षेत्र से हटकर भाग्य पर भरोसा करने वाली पीढ़ी बनती जाती है। हालांकि कर्म ही जीवन है, कर्म के प्रति अरुचि मृत्यु है।

एक युग था जब देशवासी कर्म पर ही विश्वास करते थे और अपने स्वाभिमान के आगे कभी नतमस्तक नहीं होते थे। कर्म के लिए आत्म–ज्ञान, आत्म–विवेक और आत्म–विश्वास की भावना का होना आवश्यक है जिसके अभाव में मानव के लिए प्रगति के पथ पर अग्रसर होना बहुत मुश्किल है। स्वाभिमान, आत्म–शक्ति और सच्ची साधना से ही परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति होती है। यही वह मर्म है, जिसकी ओर सुप्रसिद्ध शायर इकबाल ने इशारा किया है कि–

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर से पहले
खुदा–बंदे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है।

गीता में निष्काम कर्म पर बल दिया गया है। कर्म में सफल होना या असफल होना ज्यादा महत्व नहीं रखता। महत्वपूर्ण यह है कि मानव निःस्वार्थभाव से कर्म करे, बल्कि कर्म से फल की इच्छा न करे। कर्म अपने धर्म और कर्तव्य के पालन के लिए करना चाहिए। क्योंकि कर्म पर तो हमारा अधिकार है, किन्तु उसके फल पर नहीं। इस संबंध में यह श्लोक उल्लेखनीय है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

हमारे देश और समाज के लिए इससे बढ़कर संदेश और क्या हो सकता है। संशय और हताशा त्यागकर हम कर्म में जुट जाएं। कर्म के फल की लालसा न करें। सिर्फ अपने कर्तव्य पालन की ओर उन्मुख हों।

हमें नैतिकता की ईंटों से राष्ट्रीय चरित्र की एक सुदृढ़ दीवार खड़ी करनी है। इसमें प्राध्यापकों को सक्रिय भूमिका निभानी है। आप अपने छात्रों का सही मार्ग–दर्शन करें और ऐसा स्वस्थ शैक्षिक वातावरण सृजित करें, जिसमें लोग गुरु की महिमा समझें और सहयोग

के महत्व को स्वीकार करें। इससे राष्ट्रीय चरित्र विकसित होगा। सच तो यह है कि देश का गौरव मात्र भौतिक समृद्धि से नहीं, राष्ट्रीय चरित्र से समुन्नत होगा। युवा अध्येताओं को पर्यावरण की शुद्धता, वन संरक्षण एवं साक्षरता के महायज्ञ में पूरी शक्ति से सहयोग देना चाहिए।

आज यंत्र और तकनीक का युग है। हमें विश्व के समक्ष, अन्य देशों की प्रतिस्पर्धा में अपनी शिक्षा की प्रामाणिकता को सिद्ध करना है। यंत्र युग का वैज्ञानिक संस्कार हमें विकास की नवीन दिशा में ले चले, किन्तु हम मात्र यांत्रिकता के पाश में आबद्ध होकर न रह जाएं, इसे ध्यान में रखना होगा। आप सभी मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए भविष्य की आशा में आस्थावान बनें और अनुशासनबद्ध भी रहें। आज भारत में विज्ञान के छात्र हैं, अध्यापक हैं, प्रयोगशालाएं हैं, विश्वविद्यालय हैं, लेकिन वैज्ञानिक, शोधकर्ता, अन्वेषक, नवीन खोजों के खोजी कम होते जा रहे हैं। हमें नवीन वैज्ञानिक और नये खोजी पैदा करने होंगे। यदि यह विश्वविद्यालय इस दिशा में कुछ कर सके तो इसकी स्थापना और आपकी उपाधि अवश्य सार्थक होगी।

आप पश्चिम की चकाचौंध से चमत्कृत न हों। आप भौतिक जीवन में पश्चिम का अनुकरण और अनुगमन न करके नयी राह के अन्वेषी बनें और देश का गौरव बढ़ाएं।

●

मानवता के सच्चे पुजारी मौलाना आजाद

मौलाना अबुल कलाम आजाद के आदर्श व्यक्तित्व एवं महान कृतित्व से सभी परिचित हैं, जो एक अजीम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, निर्भीक पत्रकार एवं साहित्यकार, लोकप्रिय राजनीतिज्ञ, कर्मठ प्रशासक, युग निर्माता, प्रख्यात धर्मशास्त्री और राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक थे। देशभक्ति उनमें कूट–कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने देश की आजादी, कौमी एकता तथा जनतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था। वास्तव में मौलाना आजाद भारत के वह वीर सपूत थे जिनका यह दृढ़ विश्वास था कि जनतांत्रिक व्यवस्था एक ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था है, जिसके आधार पर ही देश संसार का महान राष्ट्र बनकर उभर सकता है और अपने गौरवशाली अतीत को जिन्दा रख सकता है। मौलाना आजाद ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सान्निध्य में स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय योगदान दिया। कई बार उन्हें अपने जोशीले भाषणों और क्रांतिकारी लेखन के परिणामस्वरूप जेल की सजाओं और नजरबंदी से गुजरना पड़ा। मौलाना आजाद के बहुमूल्य जीवन के १० वर्ष कारागार अथवा नजरबंदी में व्यतीत हुए। आजादी हासिल करने के लिए वे हमेशा इस बात पर बल देते रहते थे कि समस्त भारतीयों को एकताबद्ध होकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्षरत रहना होगा, तभी मातृभूमि स्वाधीन होगी। मौलाना आजाद देश की आजादी से भी ज्यादा महत्व राष्ट्रीय एकता को देते थे। इस संबंध में उन्होंने आजादी से पूर्व एक बार स्पष्ट शब्दों में यह एलान किया था कि 'अब यह आखिरी फैसला कर लिया गया है कि हम अपने हिन्दू, सिख, ईसाई और पारसी भाइयों के साथ मिलकर अपने मुल्क को गुलामी से निजात दिलाएंगे।' यही कारण है कि वे समस्त देशवासियों को 'एक कौम' बन जाने के लिए अपनी तकरीरों और तहरीरों से प्रेरित करते रहते थे। उन्होंने मुसलमानों को संख्या की जगह अपने ईमान पर विश्वास करने के लिए शिक्षित किया और कहा कि 'तुम सब बेखौफ होकर हिन्दुओं के साथ मिल जाओ, तभी स्वराज्य हासिल होगा और सभी लोग खुशहाल जिंदगी बसर कर सकेंगे।' मौलाना आजाद एकता के इतने जबरदस्त पक्षधर थे कि ऐसे 'स्वराज्य' को लेना भी पसंद नहीं करते थे जो देशवासियों को खंडित करके मिलने वाला हो। इस संबंध में उन्होंने खुलकर यह बात कह दी थी कि 'आज अगर एक फरिश्ता आसमान की बदलियों से उतर आये और कुतुबमीनार पर खड़ा होकर यह एलान कर दे कि स्वराज्य २४ घंटे के अंदर मिल सकता है, बशर्ते कि हिन्दुस्तान हिन्दू–मुस्लिम एकता से दस्तबरदार हो जाए तो मैं 'स्वराज्य' से दस्तबरदार हो जाऊंगा, मगर इससे दस्तबरदार न हूंगा क्योंकि अगर 'स्वराज्य' मिलने में देरी हुई तो हिन्दुस्तान का नुकसान होगा, लेकिन यदि हमारी एकता जाती रही तो यह मानवता का नुकसान है।'

इस प्रकार यह बात साफ हो जाती है कि मौलाना ने आजाद देश की आजादी की राह में मानवता को कुरबान नहीं किया। क्योंकि मानवता ही एक ऐसी शक्ति है जो समस्त

देशवासियों को एक मजबूत धागे में सम्बद्ध रख सकती है। मौलाना आजाद वस्तुतः मानवता के सच्चे पुजारी थे, जो स्वयं धर्मनिष्ठ होते हुए दूसरे धर्मों का सम्मान करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। सच तो यह है कि मौलाना आजाद एक सच्चे मुसलमान तो थे ही, इसके साथ वे सच्चे और पक्के हिन्दुस्तानी भी थे। मौलाना आजाद ने देश की आजादी और हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए पत्रकारिता का भी सहारा लिया और उन्होंने एक के बाद एक अनेक अखबारों के माध्यम से देशवासियों में भारत को आजाद कराने की भावना जागृत करने का सशक्त प्रयास किया। उनके दो पत्रों– 'अल–हिलाल' और 'अल–बलाग' में प्रकाशित उनके क्रांतिकारी लेख और सारगर्भित पाठ्य सामग्री इस बात पर द्योतक है कि उनमें भारत को आजाद कराने और देश की एकता एवं अखंडता को बनाये रखने का कितना दर्द था। मौलाना आजाद भारत का बंटवारा कभी नहीं चाहते थे। भारत को १५ अगस्त, १९४७ को जब आजादी मिली और देश का बंटावारा हुआ तो मौलाना आजाद ने इस पर विरोध प्रकट किया, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं इंडिया विन्स फ्रीडम में इस प्रकार किया है– 'मैं भारत के विभाजन के लिए सदैव ही विरुद्ध था क्योंकि मेरे विचार में मुसलमानों के लिए इसमें घाटा था बल्कि स्वयं उनका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ता था। बीस–पच्चीस वर्ष में ही विभाजन का नशा टूट जायेगा।' अब अगर मौजूदा हालात पर नजर डालें तो मौलाना आजाद की यह बात सत्यता की कसौटी पर खरी उतरी है। केवल इतना ही नहीं, मौलाना आजाद ने आजादी के तुरन्त बाद देहली की ऐतिहासिक जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर खड़े होकर मुसलमानों को संबोधित करते हुए कहा था कि– 'मेरे भाइयों यहां से पहले भी मैं तुम्हें संबोधित कर चुका हूं मगर उस समय तुम्हारे मुखड़े खिले हुए थे। बिरादराने वतन साथ मिलकर तुमने अंग्रेजों से टक्कर ली। आज तुम्हारे चेहरे मुरझाए हुए हैं। क्योंकि हिन्दुस्तान का बंटवारा हो चुका है। तुममें से ही कुछ भाइयों ने देशद्रोहियों की बातों में आकर एक देश के दो खंड करने की अनुमति दी। विभाजन को रोकने के लिए मैंने तुम्हें पुकारा– तुमने मेरी जुबान काट ली। मैंने कलम उठाया– तुमने मेरे हाथ कलम कर दिए। मैंने चलना चाहा– तुमने मेरे पांव तोड़ दिए। मैंने करवट लेना चाही– तुमने मेरी कमर तोड़ दी। हमने अपने पिछड़े होने के सारे प्रमाण दे दिए। उन्हें भूल जाओ, जिन्होंने तुमसे नाता तोड़ा और पाकिस्तान चले गये। हिन्दुस्तान को अपनी जन्नत बनाओ।' मौलाना आजाद का यह वह महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भाषण है, जिससे उनकी देशभक्ति का पता चलता है। आजा जरूरत इस बात की है कि मौलाना आजाद ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना मोहम्मद अली और मौलाना हसरत मोहानी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर भारत को एक आदर्श देश बनाने का जो संघर्ष छेड़ा था, उसकी पूर्ति में आज भी लोग एकजुट होकर पूरी शक्ति से सक्रिय योगदान दें। यही मौलाना आजाद को हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

●

महिलाओं की उन्नति से समाज निर्माण

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही महिलाओं का प्रतिष्ठित एवं गौरवशाली स्थान रहा है। सच तो यह है कि महिलाओं की उन्नति से समाज की समुन्नति होती है। इसके विपरीत जब कभी महिलाओं के स्तर में अवनति हुई तो देश, समाज और सभ्यता की भी अवनति हुई।

आजादी से पूर्व महात्मा गांधी ने इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए कहा था कि 'जब तक देश की ५० प्रतिशत जन शक्ति बंधन में होगी, अज्ञान तथा दमन के पाश में बंधी होगी, तब तक स्वाधीनता का राष्ट्रीय संघर्ष गतिमान नहीं हो सकता।' उनके आह्वान पर एकाएक सब बंधनों को तोड़कर महिलाएं स्वतंत्रता संग्राम के महासमर में कूद पड़ीं। सभी वर्गों की महिलाएं इसमें शामिल हुईं। अत्यंत सुकुमारता से पली अभिजात्य वर्ग की महिलाएं हो या मध्यम तथा निम्न वर्ग की स्त्रियां- सभी सारे बंधन तोड़कर आजादी की लड़ाई में हाथ बंटाने आ गईं। उनमें आत्मबलिदान की इतनी शक्ति, कठोर यातनाओं को सहने की शक्ति और इतना साहस कहां से आ गया, यह देखकर सभी अचंभित थे।

आधुनिक युग में आज महिलाएं अनेक क्षेत्रों में पुरुषों के साथ बराबर से कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं। राजनीति, पुलिस, प्रशासन, प्रबंधन, शिक्षा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, पर्यावरण, साहित्य, कला, संस्कृति और उद्योग आदि सभी क्षेत्रों में महिलाओं की उपलब्धियां और योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। आज महिलाएं व्यावसायिक वायुसेवा में कामर्शियल पायलट के रूप में काम कर रही हैं। वायु सेना, थल सेना और जल सेना ने अपने द्वार महिलाओं के लिए खोल दिए हैं।

गांधी जी के 'ग्राम स्वराज्य' के सपने को साकार करने के उद्देश्य से यह परम आवश्यक है कि नगरों की भांति ग्रामों में भी कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा दिया जाए, जिससे गांवों की नारी-शक्ति का सदुपयोग हो सके। इसके लिए महिलाओं के गांव-गांव में संगठन हों, जो आगे आएं और ग्रामोद्योग को बढ़ावा दें। जब तक ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं को संगठित कर उनमें चेतना का संचार नहीं होगा तब तक इस काम में हमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकती।

आप सभी को मैं बताना चाहूंगा कि महिला उद्यमियों द्वारा उद्योग की स्थापना के लिए विशेष सुविधाएं कई संस्थाओं द्वारा विशिष्ट योजनाएं संचालित करके उपलब्ध करायी जा रही हैं। इन योजनाओं में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा संचालित 'महिला विकास निधि योजना', महिला कल्याण निगम द्वारा रियायती दर पर 'मार्जिन मनी ऋण योजना', भारतीय स्टेट बैंक द्वारा संचालित 'स्त्री शक्ति पैकेज योजना' प्रमुख हैं।

उत्तर प्रदेश में महिला उद्यमियों को ज्यादा से ज्यादा प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से प्रदेश के उद्योग निदेशालय में अप्रैल १९९० में महिला उद्यमी प्रकोष्ठ की स्थापना की गई है। इसके

अलावा जिला उद्योग केन्द्रों में एक अधिकारी को महिला उद्यमियों द्वारा उद्योगों की स्थापना में सहायता प्रदान करने के लिए विशेष रूप से नामित किया गया है। इन विशिष्ट सेवाओं में महिला उद्यमियों को परामर्श, प्रोजेक्ट प्रोफाइल्स का वितरण, विशिष्ट प्रोजेक्ट तैयार कराना तथा प्रस्तावित पंजीकरण आदि में सहायता दी जाती है। महिला उद्यमियों को राज्य सरकार के उद्योग विभाग, केन्द्र सरकार तथा सार्वजनिक संस्थाओं में उपलब्ध सुविधाओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करायी जाती है तथा संबंधित विभागों से समन्वय किया जाता है।

देश एवं प्रदेश से गरीबी और बेरोजगारी समाप्त करने के लिए शिक्षित बेरोजगारों को स्वतः रोजगार योजनान्तर्गत महिला उद्यमियों को विशेष प्राथमिकता दी जाती है। महिला उद्यमियों के लिए नई योजनाओं का संचालन एवं विभिन्न जनपदों में प्रदर्शनी आयोजित की जाती है, ताकि इन महिला उद्यमियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का प्रचार-प्रसार एवं विक्रय हो सके।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम तथा उत्तर प्रदेश अल्पसंख्यक वित्तीय विकास निगम द्वारा भी कम ब्याज पर तथा विशेष रियायतों के साथ मशीनें एवं सावधि कार्यशील पूंजी ऋण उपलब्ध कराया जाता है, जिसका लाभ बेरोजगार महिलाओं को उठाना चाहिए तथा अपना मनपसंद रोजगार शुरू करना चाहिए।

इसी प्रकार भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई.डी.बी.आई.) द्वारा संचालित महिला विकास निधि योजना के अंतर्गत स्वैच्छिक महिला संस्थाओं को महिला उद्यमियों के विकास के लिए प्रशिक्षण कम विकास केन्द्र, विपणन सहायता, मैनेजमेंट उच्चीकरण तथा अन्य विपणन सहायता के लिए ऋण प्रदान किया जाता है। इस योजना का लाभ महिला उद्यमी संस्थाओं द्वारा यदि प्राप्त किया जाए तो महिला उद्यमियों का विकास तीव्र गति से संभव हो सकेगा। ऐसा मुझे विश्वास है।

महिला-९४ उद्यमियां एवं कारीगर सम्मेलन में देश के सभी प्रांतों से महिला उद्यमी प्रतिनिधि भाग ले रही हैं। मुझे आशा है कि उनके आपस में मिलने और विचार-विमर्श करने से उनमें उद्योगों के प्रति जागृति पैदा होगी और वे एक-दूसरे के अनुभवों का लाभ उठा सकेंगी।

●

वन्य प्राणी एवं वनस्पति-
एक दूसरे के पूरक

वन्य प्राणी एवं वनस्पति एक दूसरे के पूरक हैं तथा इसी तंत्र के शिखर पर प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ मानव है, जिसे भगवान ने बोलने, सोचने और अपने विवेक से निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की है। मनुष्य को प्राप्त इस गुण के सामने अन्य जीव निरीह हो जाते हैं। अतः इनको संकट से बचाने का उत्तरदायित्व भी मानव जाति पर ही है। यह समझना गलत है कि वन्य–जीवों के न रहने से या इनके नष्ट हो जाने से मानव जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वन्य जीवों के अस्तित्व के समाप्त होने से पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का संतुलन बिगड़ना स्वाभाविक है। इस संबंध में ईशावास्दोपनिषद का यह उद्धरण महत्वपूर्ण हैः–

ईशा वास्यमिदम सर्वम, यत्किंच जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यस्विद धनम।।

अर्थात 'यह जगत सर्व शक्तिमान ने रचा है, जो अपने सभी प्राणियों का हित चाहता है। अतः प्रत्येक प्राणी को इस संपूर्ण जगत का अंग बनकर अन्य प्राणियों के साथ परस्पर निर्भरता के आधार पर ही इस जगत में रहना चाहिए। कोई प्राणी किसी अन्य प्राणी के अधिकारों का अतिक्रमण न करे।'

हिन्दू धर्म में ही हम देखें तो पाएंगे कि वन्य प्राणी किसी न किसी देवी–देवता से सम्बद्ध हैं। उदाहरणार्थ नरसिंह के रूप में विष्णु भगवान, हंस के साथ सरस्वती, गज के रूप में गणेश, बंदर के साथ हनुमान आदि के सम्बद्ध होने के कारण ही वे पूज्य हैं। हमारे पूर्वजों द्वारा वन्य प्राणियों की देवताओं से सम्बद्ध करने का मुख्य उद्देश्य ही वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करने का रहा है। वन्य जीवन संरक्षण की यह परंपरा इस प्रकार आदिकाल से ही चली आ रही है।

भारतीय जीवन–दर्शन में यह मान्यता प्रारंभ से ही रही है कि अहिंसा के पथ पर चलकर ही कठिन से कठिन समस्याओं का निराकरण कर प्रगति और विकास की ओर बढ़ा जा सकता है। भारत जैसे विशाल देश को अंग्रेजी शासन से अहिंसा के बल पर स्वतंत्रता प्राप्त हुई है। अहिंसा के सबसे बड़े पुजारी और प्रचारक महात्मा गांधी का जन्म २ अक्टूबर को हुआ था। इस दृष्टि से 'वन्य जीव सप्ताह' का अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में आयोजन और भी प्रासंगिक है। आधुनिक युग में अब स्थिति यह हो गयी है कि अधिक से अधिक धन लाभ प्राप्त करने के कारण इन मान्यताओं का ह्रास होता जा रहा है। वनों के कटान के कारण एक ओर वन्य प्राणियों के इन घरों का फैलाव कम होता जा रहा है और दूसरी ओर वन्य जीव उत्पादों के परिधान, आभूषण एवं औषधियों में उपयोग के कारण अवैध शिकार की घटनाएं हो रही हैं।

मुझे खुशी है कि प्रकृति दोहन की वर्तमान परिस्थितियों में वन विभाग हतोत्साहित नहीं हुआ है और निरंतर वनों एवं वन्य जीवों की रक्षा में पूरी तरह सजग और सक्रिय है। प्रदेश में सात राष्ट्रीय पार्क, सत्रह वन्य जीव विहार, बारह पक्षी विहार तथा एक बायोस्फियर रिजर्व की स्थापना करके प्रदेश के संपूर्ण राज्य का २५ प्रतिशत क्षेत्र (लगभग १३,००० वर्ग कि.मी.) रक्षित क्षेत्र के प्रबंध के अंतर्गत है। अवैध शिकार के कारण नष्ट होने की कगार पर पहुंचे शेर, हाथी, गैंडा, मगर, घड़ियाल, कस्तूरी मृग और कछुआ के समुचित संरक्षण एवं संवर्धन की दृष्टि से कई परियोजनाएं चल रही हैं और इसमें आशातीत सफलता प्राप्त हो रही है। केन्द्र सरकार द्वारा वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, १९७२ पारित किया गया, जिसमें वर्ष १९९१ में अपेक्षित संशोधन करके संबंधित प्रावधान और कड़े बनाये गये। लेकिन सच तो यह है कि संरक्षण का कोई भी प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक संरक्षण का यह संदेश घर–घर तक न पहुंचे। जनता इस कार्य की महत्ता को स्वयं समझे और सहयोग प्रदान करे।

वन्य प्राणी कार्यक्रम आयोजन का मुख्य उद्देश्य इसी संदेश को जन–जन तक पहुंचा कर उत्तरोत्तर सहयोग प्राप्त करने का है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज का हर वर्ग संरक्षण के इस उपयोगी कार्य में सक्रिय सहयोग प्रदान करेगा।

मैं उन समस्त बच्चों को बधाई देता हूं, जिन्होंने वन्य जीव संरक्षण संबंधी प्रतियोगिताओं में पुरस्कार जीते हैं। बच्चे हमारे भावी नागरिक हैं। आशा है कि इससे बचपन से ही इनमें वन्य जीवों के प्रति सदैव समर्पित रहा करेंगे तथा देश के आदर्श भावी नागरिक बनकर इसका पूरा प्रचार एवं प्रसार करने में प्रभावी भूमिका निभाएंगे।

चिकित्सा शोध और जनता

संसार का कोई भी देश वहां के आदर्श, स्वास्थ्य एवं प्रबुद्ध नागरिकों से मजबूत बनता है। हम यदि विकसित एवं विकासशील देशों की इस दृष्टि से समीक्षा करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विकासशील देशों में विकट आर्थिक स्थिति के फलस्वरूप स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार अधिक नहीं हो पाता, जिससे इन देशों में बीमारियों को रोकना अत्यन्त दुष्कर बन जाता है। आप देखें कि विकासशील देशों में साधारण बीमारियों से भी अधिसंखय लोगों की मृत्यु हो जाती है, जिसका निदान एवं उपचार कुछ ज्यादा खर्चीला नहीं होता। यही कारण है कि भारत में जब वर्ष १९८३ में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति प्रतिपादित की गई तो इसके अन्तर्गत Preventive, Promotive तथा Rehabilitative का प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किया गया। रोग न फैले इसे हमेशा प्राथमिकता दी जानी चाहिए। क्योंकि इलाज से बेहतर बीमारी की रोकथाम है। सच तो यह है कि मलेरिया, डायरिया, गैस्ट्रो–एंटेराइटिस है, हैजा, टी.बी. आदि ऐसी बीमारियां हैं, जिन्हें साधारण इलाज से रोका जा सकता है। हमारे देश में आजादी के बाद से स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया। मैं केन्द्र में जब स्वास्थ्य मंत्री था तो मैंने स्वास्थ्य सेवाओं को देश के दुर्गम एवं सुदूर अंचलों तक पहुंचाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री रहते हुए मैंने जिनेवा में आयोजित स्वास्थ्य सम्मेलन में भाग लिया, जहां सन् २००४ तक 'सबके लिए स्वास्थ्य' का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद का पदभार सम्भालते ही प्रदेश के समस्त जनपदों का मैंने भ्रमण किया और अपने दौरे के दौरान अनिवार्य रूप से जिला चिकित्सालयों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का निरीक्षण किया। मैंने उस समयवहां चिकित्सीय सेवा में जो कमी पाई उसे तत्काल दूर करने के स्थल पर ही आदेश दिए, जिससे प्रदेश की जनता को काफी राहत मिली।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान तथा अन्य मेडिकल कालेजों में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के बारे में जो शोध कार्य चल रहे हैं, उसका लाभ शीघ्रताशीघ्र जनता तक पहुंचे। मुझे याद है कि एक बार भारत की प्रधानमंत्री, स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने वर्ष १९८१ में इसी सन्दर्भ में वर्ल्ड हेल्थ असेम्बली को संबोधित करते हुये कहा था कि– In India we should like health to go to homes instead of large numbers gravilating towards centralised hospitals. Services must begin where people are and were problems arise.

मुझे प्रसन्नता है कि संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान में, जिसकी संरचना यद्यपि प्रयोगात्मक रूप में कुछ विशिष्ट विभागों के लिए ही की गयी थी, अब उच्चकोटि की चिकित्सा परिचर्या, विकासशील देशों की सीमित संसाधनों वाली अर्थ–व्यवस्था में

ही आत्याधुनिक तरीके से उपलब्ध कराने के उद्देश्य से यहां के संकाय सदस्य, रेजीडेन्ट डाक्टर्स एवं अन्य स्टाफ कटिबद्ध हैं। हमारी विकास की गति यद्यपि हमारी आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं हो सकी है, फिर भी सीमित संसाधनों के बावजूद इस संस्थान ने संतोषजनक प्रगति की है। हमारी सरकार इस संस्थान को 'राष्ट्र का गर्व' बनाने के लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान करने के लिए सचेष्ट है। यह सही है कि इस संस्थान की विभिन्न विशिष्ट सुविधाएं जापान सरकार की सहायता एवं जाइका तकनीकी सहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत नगोया विश्वविद्यालय से प्राप्त तकनीकी प्रशिक्षण द्वारा ही काफी हद तक संभव हो सकी हैं। जापान से आये अतिथियों का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए हम उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से विश्वास दिलाते हैं कि इस संस्थान को देश का एक आदर्श संस्थान बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी जायेगी। इस संस्थान के निदेशक और अन्य चिकित्सा विशेषज्ञों से कई बार बातचीत का मुझे अवसर मिला है और मैंने इसे और ज्यादा बेहतर बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। मैं चाहूंगा कि इस संस्थान के स्थापना दिवस एवं प्रथम दीक्षान्त समारोह के अवसर पर यह प्रतिज्ञा की जानी चाहिए कि हम अपने चिन्तन को कार्य रूप देने के लिए भरपूर प्रयास करेंगे। भारत के किसी अन्य संस्थान की स्थापना के प्रथम चरण की यदि हम संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान के विगत दस वर्षों में हुये विकास से तुलना करें तो यह ज्ञात होता है कि इस संस्थान का शैशव काल समाप्त हो चुका है और अब इसे अपनी विकास की गति को और ज्यादा तेज करने की आवश्यकता है। इस प्रगतिशील विश्व के नित्य प्रति परिवर्तित होते चिकित्सा जगत में अपनी स्थायित्वता हमें बनाये रखना है। आज के इस आधुनिक युग में किसी भी संस्थान के लिए विश्वव्यापी होना नितान्त आवश्यक है। क्या संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान जनता की इस आवश्यकता एवं अपेक्षा को पूरा करने तथा उसे बनाये रखने में सफल हो पायेगा? यह एक ऐसा प्रश्न है कि जो प्रत्येक व्यक्ति जानना चाहता है तथा इसका वास्तविक स्वरूप आपके सम्मुख है। लेकिन इसके लिए केवल एक ही उक्ति मदद कर सकती है और वह है क्या आप में उत्साह है। यदि आप में आत्मबल और आत्म विश्वास प्रबल हैं तो आप अपने कार्य में समर्पित भाव से सक्रिय रहें। सफलता अवश्य आपके कदम चूमेगी। मैं इस अवसर पर उपाधि प्राप्त कर्त्ताओं को, जिनमें इस संस्थान के प्रथम तीन सत्र के विद्यार्थी सम्मिलित हैं, बधाई देता हूं तथा यह कहना भी चाहता हूं कि जब तक संस्थान का विकास नहीं होगा, तब तक किसी विभाग का विकास संभव नहीं है और जब तक किसी विभाग का विकास नहीं होगा तब तक आप लोगों का विकास संभव नहीं है। यही आपकी कुलमाता (अलमामेटर) है। आप भारत एवं विश्व में हमारे राजदूत के समान हैं। आप सभी भावी जीवन में कदम-कदम पर सफलता प्राप्त करें, इसके लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

●

युवजन और भविष्य निर्माण

राष्ट्र के निर्माण में युवाओं की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी निधि उसके बच्चे और युवक होते हैं। भविष्य के निर्माण का दायित्व राष्ट्र के युवकों के कंधों पर ही होता है। युवा शक्ति का सदुपयोग प्रत्येक समय की सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक मांग रही है। विभिन्न सरकारों का उद्देश्य भी युवा शक्ति का सही ढंग से मार्गीकरण करना रहा है। यदि हम युवा शक्ति को किसी भी सृजनात्मक दिशा में लगाने में सफल हो जाते हैं तो यह राष्ट्र के लिए बहुत बड़ा योगदान सिद्ध होता है।

प्रत्येक सरकार यह चाहती है कि प्रत्येक बच्चे को न्यूनतम स्तर की शिक्षा दी जाए तथा प्रत्येक योग्य युवक को उच्च शिक्षा दी जाए। विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में अध्ययन के साथ–साथ पाठ्येत्तर कार्यकलापों का भी प्राविधान रखा जाता है। अध्यापन के साथ–साथ इस बात पर बल दिया जाता है कि युवकों को स्वावलम्बी बनाया जाये तथा उनमें श्रम के प्रति आस्था का भाव जागृत किया जाये। आजादी के बाद शिक्षा का जो स्वरूप विश्वविद्यालयों तथा विद्यालयों में उभरकर आया है, उससे नवयुवकों में ह्वाइट कालर कार्यों के लिए जो सम्मोहन दिखता था, वह कम होता हुआ नजर आ रहा है। अब युवक तथा युवतियां कार्य के चुनाव में भी अपने स्वाभिमान की रक्षा का पूरा–पूरा ख्याल रखते हैं। निश्चय ही उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं में स्वावलम्बन की भावना का विकास होता दिख रहा है।

विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में विभिन्न शिक्षणेत्तर कार्यकलापों के आयोजन का उद्देश्य युवकों के चरित्र का निर्माण, उनमें आत्मविश्वास जगाना, जीवन में आने वाली समस्याओं का विवेकपूर्ण तरीके से सामना करने तथा समाधान करने की शक्ति जागृत करना है। जो युवक परिश्रम तथा ईमानदारी से जीविका तथा धनोपार्जन करने में विश्वास रखते हैं वे सत्य के पुजारी होते हैं तथा मानवता के प्रति सहिष्णुता का भाव रखते हैं। ऐसे युवक कठिन से कठिन परिस्थितियों में अपना मानसिक संतुलन नहीं खोते हैं। जब इस प्रकार के युवकों को राष्ट्र के नेतृत्व की बागडोर दी जाती है, वे समाज तथा राष्ट्र को समस्याओं से उबारने में सफल होते हैं। आत्मविश्वास, श्रम के प्रति आस्था तथा सत्य में विश्वास रखने वाले व्यक्ति कठिन परिस्थिति में टूटते नहीं हैं। यदि राष्ट्र की बागडोर इस प्रकार के व्यक्तियों के हाथों में हो तो बड़ी से बड़ी विपदा और बड़े से बड़ा शत्रु ऐसे राष्ट्र का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। शिक्षा का उद्देश्य ऐसे ही गुणों से युक्त युवकों का निर्माण करना है। शिक्षा केवल विश्वविद्यालयों, विद्यालयों, प्रयोगशालाओं एवं पुस्तकालयों तक ही सीमित न रहे, इसलिए उसको प्रयोगात्मक दृष्टिकोण देना आवश्यक है। ऐसा तभी हो सकता है जब शिक्षक तथा शिक्षार्थी दोनों में इस प्रकार का दृष्टिकोण उत्पन्न हो। विभिन्न पाठ्येत्तर कार्यकलापों जैसे खेल–कूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम, एन.सी.सी., स्काउट गाइड,

विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायें तथा राष्ट्रीय सेवा योजना कार्यक्रम का उद्देश्य भी ऐसे ही परिश्रमी तथा गुणवान युवकों का सृजन है।

हमारे लिए यह गर्व का विषय है कि हमारे नवजवान छात्र तथा छात्राएं राष्ट्रीय सेवा योजना के तत्वावधान में विभिन्न प्रकार के सृजनात्मक कार्य कर रहे हैं। हमारे पास नवयुवकों की एक बहुत बड़ी सेना है। यदि उचित मार्गदर्शन दिया जाए तो यह राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। राष्ट्रीय सेवा योजना के अन्तर्गत जो कार्य किये जा रहे हैं, हालांकि देश की आवश्यकताओं के अनुपात में ये न्यून हैं, परन्तु उससे एक सुनहरे भविष्य का सूत्रपात होता नजर आता है।

हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग निरक्षर है। भारत जैसे एक प्रगतिशील राष्ट्र के लिए प्रत्येक युवक तथा युवती व बच्चे का शिक्षित होना आवश्यक है। अशिक्षित समाज धार्मिक तथा सामाजिक रूढ़िवादिता से जकड़ा होता है, जिसकी जकड़न को शिक्षा के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। हम चाहते हैं कि देश का प्रत्येक नागरिक नई-नई प्रगतियों, सरकार की नीतियों तथा जनहित में क्रियान्वयन सरकार की कल्याणकारी योजनाओं से भिज्ञ हो और उससे लाभान्वित हो।

हम एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र हैं, जिसकी सरकारों का गठन साधारण नागरिक के हाथों में होता है। प्रत्येक नागरिक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मताधिकार का महत्व समझे और अपने मताधिकार का उपयोग करे। प्रजातांत्रिक देश के प्रत्येक नागरिक व्यक्ति को आसानी होती है। नवयुवकों के द्वारा साक्षरता के संबंध में जो कार्य किये जा रहे हैं, वे अत्यन्त सराहनीय हैं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इस पावन कार्य से अधिक से अधिक युवक अपने को सम्बद्ध करें। आजादी के लगभग ५ दशक व्यतीत हो जाने के पश्चात भी हमारा समाज दहेज जैसी कुप्रथाओं से जकड़ा हुआ है, जिसके कारण अनेक युवतियों का जीना दुष्कर हो जाता है और अनेक बार उन्हें आत्महत्या करने को बाध्य होना पड़ता है। मैं नवयुवकों का आह्वान करता हूं कि वे आगे आयें और वर्षों से चली आ रही कुरीतियों से समाज को मुक्त करें।

सुखी जीवन के लिए मनुष्य धर्म का आलम्बन अपनाता है। समाज के वर्गीकरण में जाति का अपना महत्व है, परन्तु धर्म और जाति के नाम पर हमारे समाज में आज जो हो रहा है, वह एक सुखद भविष्य का आभास नहीं देता है। शिक्षा व्यक्ति को अत्यन्त उदारवादी तथा सहिष्णु बनाती है। आप में विभिन्न धर्मों तथा जातियों के लिए जो आदर का भाव है तथा उनसे आपने जो अच्छाइयां ग्रहण की हैं, उन्हें आपके लिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचाना आवश्यक है।

हमें आये दिन बाढ़, सूखा, महामारी तथा दैवी विपदाओं का सामना करना पड़ता है, जिससे सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है। यह आवश्यक है कि इन घटनाओं के

प्रारंभ में युवा वर्ग पीड़ितों को आवश्यक सहायता पहुंचायें। इसके लिए यह आवश्यक है कि देश में अधिक से अधिक स्वायत्तशासी संस्थाओं का गठन हो ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे समाज की सेवा कर सकें। इस प्रकार की संस्थाओं के गठन में राष्ट्रीय सेवा योजना से सम्बद्ध छात्र एवं छात्रायें महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना में जो भावनायें निहित हैं तथा उसका जो संदेश है उसे आप दूर–दूर तक फैलावें और छात्र जीवन के समाप्त होने के पश्चात भी इन भावनाओं का परित्याग न करें। हमारा समाज गरीबी, विपन्नता तथा रोगों से घिरा रहता है। अज्ञानता के कारण लोग रोगों का इलाज कराने के बजाए जादू टोना करना उचित समझते हैं। ये रोग जब तक गंभीर रूप धारण नहीं कर लेते रोगी के रिश्तेदार उसे इलाज के लिये चिकित्सक के पास नहीं ले जाते हैं। ये गांवों में जाकर लोगों को इस संबंध में शिक्षित कर सकते हैं।

●

इस जमीं को तेरी नापाक न होने देंगे : गणेश शंकर विद्यार्थी

आज से ६३ वर्ष पूर्व २५ मार्च को साम्प्रदायिक सौहार्द और सद्भाव के लिए स्व. विद्यार्थी जी ने प्राणों का बलिदान किया। उनके बलिदान पर जोश मलिहाबादी की पंक्तियां बरबस याद आ जाती हैः–

'इस जमीं को तेरी नापाक न होने देंगे।
तेरे दामन को कभी चाक न होने देंगे।
तुझको जीते हैं तो गमनाक न होने देंगे।
ऐसी अक्सीर को यूं खाक न होने देंगे।
जी से ठानी है यही, जी से गुजर जाएंगे।
कम से कम वादा ये करते हैं कि मर जाएंगे।'

कानपुर में जब मार्च १९३१ में वहशियाना हिन्दु–मुसलमान साम्प्रदायिक फसाद हुये तो अपनी प्यारी जमीन को नापाक होने से बचाने के लिए स्व. गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अत्यंत मर्मस्पर्शी श्रद्धाजंलि में लिखा हैः– 'रंज हुआ और दिल को समझाने पर भी दिल समझा नहीं। लेकिन रंज की क्या बात है? गणेश जी जैसे जिए, वैसे ही मरे। अगर हममें से कोई आरजू करे और अपने दिल की प्यारी इच्छा पूरी करना चाहे तो वह इससे अधिक क्या मांग सकता है कि उसमें इतनी हिम्मत हो कि मौत का सामना अपने भाइयों की और देश की सेवा में कर सके और इतना खुशकिस्मत हो कि गणेश जी की तरह मर सके। शान से वह जिए और शान से वह मरे और मरकर जो उन्होंने सबक सिखाया, वह हम बरसों जिन्दा रहकर क्या सिखाएंगे।'

महात्मा गांधी ने कहा था 'मुझे जब उसकी याद आती है तो उससे ईर्ष्या होती है। इस देश में दूसरा गणेश शंकर क्यों नहीं होता? कितने ऐसे लोग होंगे जिनमें अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहने का साहस होता है, जो मृत्यु को वरण कर सकते हैं। पर अपने सिद्धान्तों को नहीं छोड़ सकते? जब कानपुर में दंगे हुए तो लाखों की सम्पत्ति एक दो दिन में नष्ट हो गयी। तब एक दुबला–पतला कलम का सिपाही निहत्था मानवता को बचाने सड़कों पर निकल पड़ा– एक मुसलमान और दो हिन्दू स्वयंसेवकों के साथ। कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन ने कहीं लिखा हैः– 'कानपुर में अधिकारीगण दानव हो गए थे। मानवता का अवशेष लुप्त हो गया तो क्या एक मानव कानपुर में बच रहा था।'

उनकी पत्नी ने आगाह किया कि वे घर से न निकलें। पर उन्हें जान की परवाह नहीं थी। वे जिन सिद्धान्तों के लिए ज़ीते थे उन्हीं के लिए मर जाना पसंद करते थे। इसके पहले

ही जेल से एक साल की कठोर सजा भुगतकर ९ मार्च को छूटे थे। परिवार में और दोस्तों से ठीक से मिले भी न थे। पर वे ममता और माया के बंधन तोड़ कर निकल गए। वे इंसानों को बचाने निकले थे। उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि वे जिसे बचा रहे हैं वह हिन्दू है या मुसलमान। जो मुसीबत में था उसे बचाया। जब खुद उन पर हमला हो गया तो भागकर जान नहीं बचाई। उनके साथी ने घसीटकर उन्हें पास की गली में ले जाना चाहा। पर विद्यार्थी जी ने कहाः– 'क्यों घसीटते हो मुझे? मैं भागकर जान नहीं बचाऊंगा। एक दिन मरना तो है ही। अगर मेरे मरने से इन लोगों के हृदय की प्यास बुझती हो, तो अच्छा है कि मैं यहीं अपना कर्तव्य पालन करते हुए आत्म–समर्पण कर दूं।'

वे महान देशभक्त थे। देश की उदारता की, सहिष्णुता की, वसुधैव कुटुम्बकम की महान परम्पराओं पर उन्हें गर्व था। उनके अखबार 'प्रताप' का तो आदर्श वाक्य– मोटो ही थाः–

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।'

'प्रताप' का पहला सम्पादकीय उनकी संकीर्णता को दूर हटाने की मनोवृत्ति को स्पष्ट करता है। यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना १ नवम्बर १९१३ को था, जिस दिन 'प्रताप' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसका कुछ अंश उद्धृत करना चाहता हूंः– 'हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि देश की विविध जातियों, सम्प्रदायों और वर्णों में परस्पर मेल–मिलाप बढ़े। जो लोग जबरदस्त हैं उन्हें जबरदस्ती से रोका जाए और जो कमजोर हैं उनकी कमजोरी दूर की जाए। जो बलवान जाति अपनी ताकत के भरोसे, दूसरी कमजोर जाति को दबाती या कुचलती हैं, वह अत्याचार करती हैं। साथ ही जो जाति हर मौके या हर काम में संतोषी बनकर मिटना या पीछे रहना अपना प्रारब्ध समझती है वह किसी तरह से कम अपराधी और कम दोषी नहीं हो सकती। लेकिन जिस दिन हमारी आत्मा इतनी निर्बल हो जाए कि हम अपने प्यारे आदर्श से गिर जाएं, जानबूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरूता करें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अन्त हो जाए।' जीवन भर वे शोषण के विरुद्ध लड़ते रहे। शोषण का कोई भी स्वरूप हो, वे उसके विरुद्ध थे। चाहे नौकरशाही का शोषण हो, चाहे जमींदारों का हो, चाहे धनवानों का हो, चाहे उंची जातियों का हो और चाहे धार्मिक हो, उन्होंने इन सबके विरुद्ध अपनी सशक्त कलम चलाई। मृत्यु के तीन माह पूर्व २९ जनवरी १९३१ को जेल में अपनी डायरी में उन्होंने लिखाः– 'जीवन भर आमनुषिकता, असज्जनता के विरुद्ध लड़ता रहा। ईश्वर बल दे कि आगे भी लड़ सकूं।'

४० वर्ष के अपने संक्षिप्त जीवन में वे कितना कुछ कर गए। औपचारिक शिक्षा बहुत नहीं थी पर स्वाध्याय से विद्वान हो गए। उनमें केवल एक ही व्यसन था– वह था पढ़ना। उनके समकालीनों ने लिखा है कि यदि अखबार आ जाए तो खाना छोड़कर उठ जाते थे

और पढ़ने लगते थे। पढ़ते इतनी एकाग्रता से थे कि कुछ छूटता नहीं था। केवल एण्ट्रेन्स पास थे पर फ्रांसीसी उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो के उपन्यास 'नाइन्टी थ्री' और 'ला मिजराब्ल' का हिन्दी अनुवाद किया। जीवन भर विद्या व्यसनी रहे इसलिए उपनाम विद्यार्थी रख लिया। उनकी सम्पादन कला का लोहा तो आज भी लोग मानते हैं। सम्पादन करते थे, सम्पादकीय लिखते थे और उसके बाद वक्रतुण्ड, लम्बोदर, भारतीय युवक और अनेक नामों से लेख भी लिखते थे। नरवर में एक सामाजिक संस्था गठित की थी। उस 'सेवाश्रम' में जाते और सेवा कार्य करते।

वे मानवीय गुणों से भरपूर थे। उनके दरवाजे से कोई खाली नहीं रह गया। यथाशक्ति सबकी सहायता की। जब क्रांतिकारी आंदोलन चल रहा था तो हर प्रकार से क्रांतिकारियों की सहायता की, हालांकि वे हिंसा से सहमत नहीं थे। काकोरी षडयंत्र में पकड़े गये लोगों के पक्ष में उन्होंने सबल आवाज उठाई। भगत सिंह तो कई बार वेश बदलकर बलवंत सिंह बनकर उनके साथ रहे।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को पैसों की सख्त जरूरत पड़ी। विद्यार्थी जी ने फौरन उन्हें लिख दिया कि आप जितने चाहें लेख अखबार को भेज दें और उसका जितना पारिश्रमिक चाहें आपके चारणों में रख दिया जाएगा। एक बार कोई आदमी बदहवास उनके कार्यालय में आया और कहा कि उसका सब माल–असबान गुम हो गया है। उससे न धर्म पूछा न जाति। एक नजर में परख लिया कि आदमी कष्ट में है। तुरन्त जो मदद कर सकते थे कर दी। यह याद रखने की बात है कि वे स्वयं आर्थिक संकट में थे। वे हर प्रकार के अन्याय के खिलाफ थे। उन्होंने हर अवसर पर जात–पांत के बंधनों के विरुद्ध लिखा और कहा। वे महिला मुक्ति के समर्थक थे। उनके जीवन वृत्त लेखकों ने उनके इस पहलू पर प्रकाश डाला है। वे कहते थे कि उनकी पुत्रियों को कभी ऐसा महसूस न हो कि वे पुत्रों से कम हैं। पत्रकारिता उनकी निर्भीक थी तो निष्पक्ष भी थी। वे जब तक सभी तथ्यों की पहड़ातल नहीं कर लेते थे तब तक कुछ नहीं लिखते थे। वे पत्रकारों से कहते थे: 'जब किसी के विरुद्ध लिखो तो यह मानकर लिखो कि वह व्यक्ति तुम्हारे सामने बैठा है और कभी भी तुमसे जवाब तलब कर सकता है।'

सही मायनों में वे कुसुम से कोमल और वज्र से कठोर थे। मुसीबत में पड़े लोगों के लिए फूल के समान कोमल, अन्याय के खिलाफ वज्र से कठोर।

साम्प्रदायिकता के वे शत्रु थे। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, सबको वे समान दृष्टि से देखते थे। पूरे जीवन भर वे हिन्दू–मुस्लिम कलह को दूर करने के लिए प्रयासरत रहे और अपना जीवन अर्पण कर दिया। डा. गंगा नारायण त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'कालजयी एक पुरुष' में लिखा है कि पंडित नेहरू के कमरे में दो ही तस्वीरें रहती थीं: एक गांधी जी की और दूसरी विद्यार्थी जी की। जब वे साम्प्रदायिकता के विरुद्ध लिखते थे तो न मुसलमानों को बख्शते थे, न हिन्दुओं को। इस मामले में उनकी चेतना कबीर की चेतना थी। जहां बन

पड़ा वहां दोनों समुदायों की बराबर सेवा भी की। उन्हीं आदर्शों की रक्षा में उन्होंने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।

आज भी ऐसी ही हिम्मत और निष्पक्षता की जरूरत है। अतिवाद और कठमुल्ला किसी धर्म का हो, जाति का हो उसका विरोध निष्पक्ष होकर किया जाए। १८ अगस्त १९२४ को मौलाना हसरत मोहानी पर 'प्रताप' में विद्यार्थी जी ने एक लेख में लिखा है: 'हमें ऐसे बड़े और जिम्मेदार आदमियों की सख्त जरूरत है जो लगी लिपटी न करते हों, मुरव्वत न करते हों, जिन्हें अपनी लीडरी कायम रखने के लिए मजहबी दीवानों की हां में हां मिलाने की जरूरत न हो।'

यह बात हम सदियों से जानते हैं कि सभी धर्म एक हैं। उपासना की पद्धति सबकी अलग-अलग है और वह हर इंसान का निजी मामला है। उद्देश्य सभी धर्मों का एक ही है। शायर मीर तकी मीर ने लिखा है:-

'उसके फरोगे हुस्न से झमके है सबमें नूर
शम्मे हरम हो या दिया सोमनात का।'

उसी एक ईश्वर के प्रकाश से सबका हुस्न प्रकाशमान है, चाहे वह काबे का दीपक हो या सोमनाथ का। सहिष्णुता की हमारी परम्परा रही है। अमीर खुसरो, कबीर, जायसी, दारा शिकोह, गुरु नाक और रहीम की परम्परा सच्ची सहिष्णुता की परम्परा है। सारे धर्म और विश्वास एक ही माला में पिरोये हुए हैं। सद्भावना हमारे रक्त में है। जरूरत है इसको बनाये रखने की। हर ऐसी ताकत को जो इस विश्वास को डिगाना चाहती है, शिकस्त देना जरूरी है।

मुझे विश्वास है कि गणेश शंकर जी का बलिदान खाली नहीं जायेगा। हमारी उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि एक साम्प्रदायिकता और शोषण रहित समाज की स्थापना होगी। मुझे विश्वास है कि उनके सपनों के भारत का हम सब मिलकर निर्माण करेंगे।

महादेवी : नीर भरी दुःख की बदली

स्व. महादेवी वर्मा कवयित्री तो थीं ही पर कलम के साथ तूलिका पर भी उनका समान अधिकार था। उनके चार कविता संग्रहों को मिलाकर १९३९ में उनका संग्रह 'यामा' के नाम से छपा था। इस संग्रह में उनके बनाए हुए आठ रंगीन चित्र भी प्रकाशित हुए। यह रंगीन चित्र तूफान, अरुणा, यात्रा का अन्त, वर्षा, दीपक, संध्या, मिलन और निशीथिनी शीर्षक से छपे थे। आज महीयसी महादेवी के चित्र को अनावृत कर हम उनके चित्रकार रूप को भी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। वे शब्दों में भी चितेरी थीं। महादेवी जी की कला चित्रमय है। चित्रात्मकता उनके काव्य का अंग थी। उनकी कविता का एक अंश देखिये। जैसे एक चित्र सामने आ जाता हैः–

'पुलक–पुलक उर सिहर–सिहर तन
आज नयन क्यों आते भर–भर'

रंग शब्द भी बार–बार उनकी कविता में आता हैः–

'रज के रंगों में अपना तू झीना सुरभि दुकूल रंगा ले।'

या

'मैं उन मुरझाए फूलों पर संध्या के रंग जमा जाती।'

उन्होंने जो गद्य लिखा है उनमें सजीव रेखाचित्र ही हैं। उनकी गद्य रचनाएं 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं', 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' हैं। इन्हें पढ़कर इनके चरित्र जैसे जीते जागते हमारे सामने खड़े हो जाते हैं। उनकी अभिरुचि इतनी कलात्मक थी कि सुमित्रानन्दन पंत उनके घर को मंदिर कहते थे। उनका जन्म ही १९०७ में रंगों के त्योहार होली के दिन हुआ था। वे वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं। कवि, संस्मरण लेखक, निबंध लेखन, प्रखर वक्ता, संपादक, शिक्षाविद, संस्कृत की विदुषी, अनुवादक और पाक कला में निपुणता सब कुछ उनके व्यक्तित्व का अंग था। इस सबसे बढ़कर वे अत्यंत सात्विक और ममतामय चरित्र की धनी थीं। प्रसिद्ध पत्रकार श्री पी.डी. टंडन ने हाल में उनका एक संस्मरण लिखा है। महादेवी जी ने बताया कि नैनीताल के पास रामगढ़ में उनका सेब का बगीचा है। श्री टंडन ने पूछा कि हर साल कितने के सेब बेचे जाते हैं। तब महादेवी जी ने उत्तर दिया कि उनके बगीचे के सेब बेचे नहीं जाते। सारे सेब पास के स्कूल के बच्चों के लिए हैं। वे जब चाहें, जितना चाहें, जितना खायें। उनका पूरा जीवन आध्यात्मिकता से भरपूर था। उनके साहित्य में भी प्रेम के उच्चतम आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है। वेदों और उपनिषदों का उनकी कविता पर महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। विशेषकर ऋग्वेद का। कविता की प्रतिभा उनमें जन्मजात थी। १९१४ में सात वर्ष की आयु में उन्होंने पहली कविता लिखीः-

'आओ प्यारे तारे आओ, मेरे आंगन में बिछ जाओ।'

बहुत छोटी कक्षाओं में पढ़ती थीं तभी ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति करती थीं। समस्यापूर्ति में एक पंक्ति दे दी जाती है और उसके आधार पर कविता बनानी पड़ती है। बचपन से ही वे इसमें निष्णात थीं। १५ वर्ष की आयु में 'चांद' के प्रथम अंक में उनकी प्रौढ़ कविता प्रकाशित हुई। एक बार उनकी मां भजन गाते-गाते आगे की पंक्तियां भूल गयीं। महादेवी जी ने तुरन्त नई पंक्तियां गढ़ लीं। इसीलिए बहुत कम कवियों को गीत के छंद और लय पर बिना प्रयास ही इतना अधिकार मिला, जितना महादेवी जी को था। विरह, वेदना और करुणा उनकी वकिता के मुख्य तत्व हैंः-

'प्रिय जिसने दुख पाला हो
जिन प्राणों से लिपटी हो
पीड़ी सुरभित चन्दन-सी
तूफानों की छाया हो जिसको
प्रिय आलिंगन-सी
जिसको जीवन की हारें हों
जय के अभिनन्दन-सी
वर दो, यह मेरा आंसू उसके
उर की माला हो।'

कविता के माध्यम से उन्होंने अपने वैयक्तिक दुःख, संतोष और वेदना को विस्तार दिया। संसार में अज्ञात रहस्यमय तत्व को उन्होंने प्रधानता दी। उनकी वेदना कितने रूपों में प्रकट हुईः-

'मैं नीर भरी दुःख की बदली,
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय अपना इतिहास यही
उमड़ी कल थी फिर आज चली।'

उनकी कविता में विरह, वेदना और करुणा, प्रेम की अनुभूति के कारण हैंः-

'मैं कण-कण में ढाल रही अलि,
आंसू के मिस प्यार किसी को,
मैं पलकों में पाल रही हूं
यह सपना सुकुमार किसी का।'

५८ उनका प्रेम किसी व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं है। ख्याति प्राप्त समाचोलक डा. नगेन्द्र ने इसे स्पष्ट किया हैः- 'वास्तव में महादेवी के प्रेम का पात्र व्यक्ति विशेष न होकर ऐसा कल्पित आलम्बन है जो जीवन के चरम सौंदर्य और उदात्त सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक

है।' इसी कारण उनकी कविता में ऐसे प्रतीकों का प्रयोग हुआ है जो आशा या निराशा को अभिव्यक्त करें। दीप का उपयोग तो अक्सर ही हुआ है।

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिफल
प्रियतम का पथ आलोकित कर।'

दीपक के अलावा मेघ, रात्रि, अन्धकार, पावस, जलधारा, विद्युत, नक्षत्र आदि बिम्बों का प्रयोग उन्होंने किया है। उनके बिंब सीमित हैं। उनके माध्यम से उन्होंने भाव व्यक्त किए हैं। पर आश्चर्य की बात है कि उन्होंने किसी भाव को दोहराया नहीं है। सीमित विंबों के होते हुये भी उनकी कविता में विविधता बहुत है। खड़ी बोली को जिस रूप में हम जानते हैं उसे गढ़ने में महादेवी जी का बड़ा हाथ है। ऐतिहासिक दृष्टि से छायावादी कवियों का यह बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद के लेखकों ने अपने लेखन से खड़ी बोली को स्वरूप दिया पर उसे प्रतिष्ठित छायावादी कवियों ने किया। इसके पहले कविता ब्रजभाषा में कही जाती थी। ब्रजभाषा की मिठास सभी जानते हैं उसकी टक्कर में खड़ी बोली को खड़ा करना सरल नहीं था स्वयं महादेवी जी ने लिखा है:– 'काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय में जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य में अजेय हो। क्योंकि एक तो नवीन अनगढ़ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा करना कठिन हो जाता है। दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त हो जाता है।' यह महादेवी जी का ही प्रयास था कि प्राचीन का अभ्यस्त युग नई कविता के प्रति विरक्त नहीं हुआ। उसकी भाषा अत्यंत परिष्कृत, अतयंत मधुर, अत्यंत कोमल है। यद्यपि उन्होंने संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है पर वह सब जाने पहचाने शब्द हैं। पर जहां जरूरत महसूस की वहां उन्होंने देशज शब्दों का प्रयोग भी किया है। एक जीवित भाषा के लिए जरूरी है कि वह देशकाल के अनुरूप बदले और विकसित हो। लोग गीतों का भी उन पर बड़ा प्रभाव था। उन्होंने अपने एक निबंध में लिखा है: 'मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक गीतों की धरती पर पले हैं।' इसीलिए उनकी रचनाओं में कई स्थानों पर रात्रि की जगह 'रैन', वायु की जगह 'बतास' आदि का प्रयोग देखा जाता है। एक आलोचक के अनुसार 'ऐसी भाषा के प्रयोग के कारण महादेवी की काव्यभाषा में अपूर्व सुकुमारता तथा स्निग्धता का समावेश हो गया है। स्वर तंतुओं में गुंफित शब्दावली रेशम पर मोतियों की तरह ढुलकती जाती है।' देश विदेश की कवयित्रियों में महादेवी का उच्चतम स्थान है। आधुनिक युग में तो किसी महिला कवि–कलाकार का कृतित्व उनके समकक्ष नहीं रहा। डा. नगेन्द्र ने महादेवी जी का मूल्यांकन करते हुए लिखा है 'प्राचीन कवयित्रियों में हिन्दी की 'मीरा', तमिल की 'अंदाल' और कश्मीरी की 'लल–देद' के नाम देशकाल की सीमा पार कर अमर हो गए हैं। इन तीनों के काव्य में अनुभूति की सघनता महादेवी के काव्य से अधिक है, इसमें सन्देह नहीं। पर केवल अनुभूति की सघनता ही कविता नहीं है। इस अनुभूति की कलात्मक अभिव्यक्ति की कविता है और इस लक्षण के अनुसार महादेवी का स्थान अन्य-

है।' उनके शब्द रेखाचित्र अद्‌भुत हैं। उन्होंने अपने परिवेश के आसपास के ऐसे व्यक्तियों का चित्रण किया है जिन पर हम सामान्यतः ध्यान भी नहीं देते। उन्होंने घरेलू सेवक रामा और भक्तिन का, बाल विधवा बिट्टो का, सौतेली मां का अत्याचार सहती बिन्दा, दलित सबिया, अन्धे आलोपी आदि का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। 'मेरा परिवार' में उन्होंने अपने पशु पक्षियों का जीवंत चित्रण किया है। नौ वर्ष की आयु में ही उनका विवाह डा. स्वरूप नारायण वर्मा से हो गया था। पर उन्होंने स्वेच्छा से विवाह बंधनों का विच्छेद कर लिया था। उनके पशु–पक्षी ही उनका परिवार थे। नीलू कुत्ता, दुर्मुख खरगोश, सोना हिरनी का जैसा चित्रण उन्होंने किया है वैसा विश्व साहित्य में केवल जेरल्ड डरेल ने अपनी पुस्तक 'एनीमल्स एण्ड अदर रिलेशंस' में किया है। 'पंथ के साथी' में अपने समकालीन कवियों निराला, प्रसाद, पंत आदि के रेखा चित्र हैं। उनका निबंध लेखन विद्वतापूर्ण था। साहित्य, भाषा, अध्यात्म आदि पर उनके विचार उनकी पुस्तकों की भूमिकाओं में मिलते हैं। पंत जी की षष्ठिपूर्ति पर उन्होंने 'सप्तपर्णा' की रचना की जिसकी ६१ पृष्ठ की भूमिका विख्यात है। इस पुस्तक में बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, जयदेव आदि के उनके किए गए अनुवाद हैं। वे प्रखर वक्ता थीं। भाषण में अद्‌भुत प्रवाह था। किसी ने उनके भाषणों के बारे में कहा है:– 'लगता था जैसे पूनम की चांदनी में झलमल गंगा की धारा बह रही थी।' वक्तृत्व में उनकी तुलना सरोजनी नायडू से की जाती थी। शिक्षा के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। वे जानती थीं कि भारतीय अशिक्षित होने के कारण बहुत पीड़ित हैं। इसलिए स्त्री शिक्षा की ओर उनका रुझान हुआ। प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना मे ही वे इसकी प्राचार्या रहीं। साहित्यकारों के लिए वे बहुत कुछ करना चाहती थीं। इसके लिए उन्होंने इलाहाबाद में साहित्य संसद की स्थापना की। साहित्य पत्रिका 'चांद' का उन्होंने अनेक वर्षों तक संपादन किया। जीवन में उन्हें मान सम्मान मिला। उन्हें 'सक्सेरिया पुरस्कार' मिला 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' उन्हें दिया गया। भारत सरकार ने उन्हे पद्मभूषण से अलंकृत किया। 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' भी उन्हें मिला। समकालीन साहित्यकारों में उनके प्रति अगाध स्नेह और श्रद्धा थी। उनकी निश्छल हंसी विख्यात थी। दिनकर जी उसे सात्विक उल्लास कहते थे। वे निर्भीक थीं। स्वाधीनता संग्राम के समय कितने क्रांतिकारियों को, स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को उन्होंने आश्रय दिया। एमर्जेन्सी के समय उन्होंने सरकार की कटु आलोचना की। पर इंदिरा जी के स्पष्ट निर्देश थे कि वे कितना ही कुछ भी कहें, उनके विरुद्ध किसी प्रकार की कार्रवाई न की जाए। यह दोनों की महानता को प्रकट करता है। अपना दीर्घ जीवन उन्होंने सरलता और सहजता से किसी सात्विक संत की तरह जिया। मृत्यु का उन्हें कोई भय नहीं था। १९८७ में उन्होंने सहज भाव से मृत्यु का वरण किया। जब तक देश रहेगा, हिन्दी साहित्य रहेगा, महादेवी जी का नाम रहेगा। मैं इस कालजयी कवयित्री को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूं।



आज फिर गांधी की जरूरत है

गांधी जी ने ग्राम स्वराज्य की स्थापना, सभी को न्यायदेने, समाजमेंसमता-समानताकायमकरनेतथाभारत को एक आदर्श देश बनाने का जो सपना देखा था, उसे साकार करने के लिए हमें एकजुट होकर कार्य करने की आवश्यकता है। गांधी जी वास्तव में समता और समानता पर आधारित एक ऐसे शोषण रहित समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें ऊँच-नीच, छुआ-छूत, अन्याय और अत्याचार न हो तथा सभी को समान अधिकार प्राप्त हों।

साहस, त्याग, अनुशासन, संयम और अहिंसा गांधी जी के मूल मंत्र थे।

● **मोतीलाल वोरा**